मानव मन्दिर

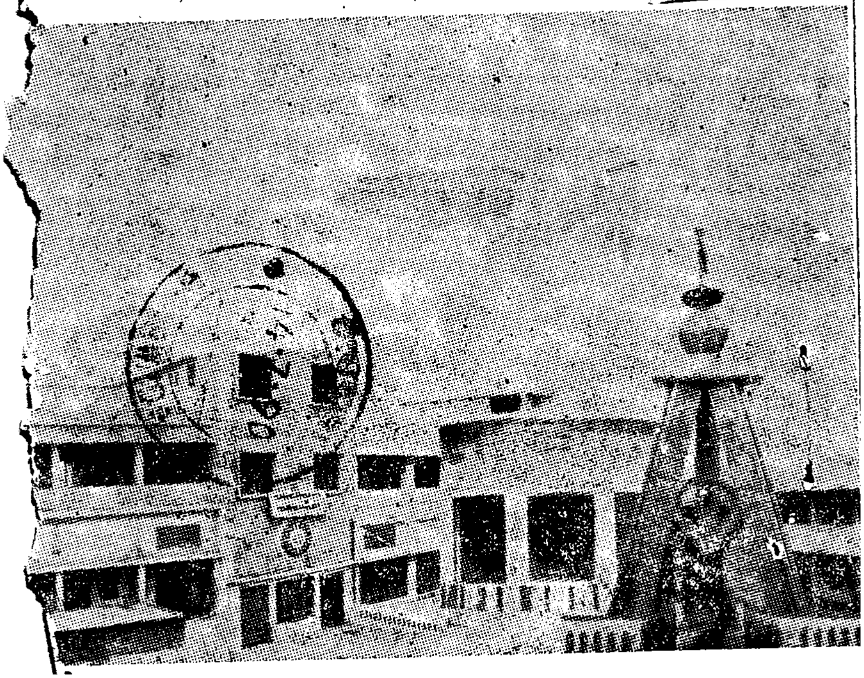

शुभ समाचार

सत्संगी जन को यह जान कर खुशी होगी कि हिज़ होलीनेस परमसन्त सद्गुरु हजूर मानव दयाल डा० आई० सी० शर्मा जी महाराज का, विदेशों के सत्संग-दौरे पर रवानगी से पूर्व आशीर्वाद-सत्संग, तथा सत्संगियों की तरफ से हजूर महाराज को विदाई-समारोह, मालवान पब्लिक स्कूल, पुराना राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली में दिनांक 16-7-90 को सायंकाल 5 बजे से 7.30 बजे तक सम्पन्न होगा। सभी प्रेमी-सत्संगी जन इस शुभ अवसर पर सादर आमंत्रित हैं।

महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ

सभी सत्संगी जन को सूचित किया जाता है कि हिज़ होलीनेस हजूर मानव दयाल जी महराज, 16 जुलाई 1990 को दिल्ली में आशीर्वाद-सत्संग फरमाने के बाद. दो माह के विदेशों के दौरे पर प्रस्थान करेंगे। अतः कोई सज्जन हजूर महाराज के भारत वापसी से पहले उन्हें पत्र आदि लिखने का व्यर्थ कष्ट न करेंगे। हजूर की भारत वापसी की सूचना समय से 'मानव मन्दिर' में छापी जायेगी। उसके बाद ही पत्राचार करने का कष्ट करें।

2. अनिवार्य परिस्थितियों में हजूर महाराज से पत्राचार का पता निम्नलिखित होगा :—

C/o Mrs. THELMA CARTER
Box 1716-11700, Old Columbia Pike
Silver Spring Md. 20904
MARYLAND U.S.A

3. अपने पत्रों का उत्तर समय से प्राप्त करने के लिए सत्संगी जन कृपया आवश्यक डाक-टिकट लगा हुआ अपना पूरा व स्पष्ट पता लिखा हुआ लिफाफा-कार्ड आदि अवश्य भेजें। अन्यथा उत्तर देने में कठिनाई व देर होती है। कष्ट के लिए सत्संगी क्षमा करेंगे।

जनरल सेक्रेटरी

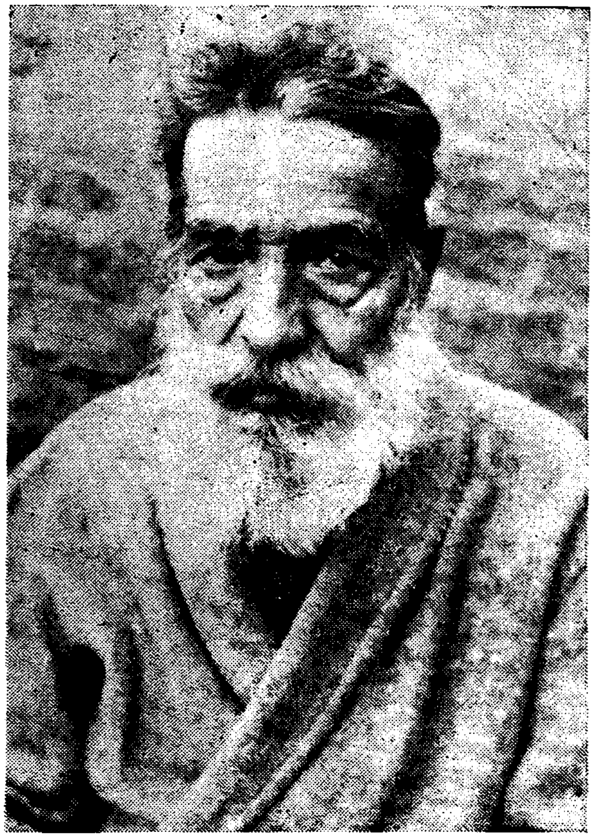

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

BE MAN

मनुष्य बनो

सम्पादक :
डा० परस राम अग्रवाल

वर्ष 17	मंगलवार, 10 जुलाई 1990	संख्या 3

सत्संग के आठ वचन

दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी वर्मन

तीसरा वचन

सत्संग कहते हैं सच्चे जीवन या सत की संगत को। यह जीवन, जो हम, तुम और प्राय: सभी लोग व्यतीत कर रहे हैं, सत का जीवन नहीं है। यह शरीर का जीवन है, मन, बुद्धि का जीवन है। इन्द्रियों के संग में रहने से इन्द्रियों का प्रभाव तुम पर अवश्य पड़ेगा। शरीर का संग करने से शारीरिक रोग पैदा होंगे और मन का संग करने से संकल्प-विकल्प की भावनाएँ अधिकता के साथ पैदा होंगी। इन्द्रियाँ असत हैं, शरीर असत है और मन, बुद्धि भी असत हैं। इनके संग का नाम असतसंग है, जबकि सत्संग का मतलब सत का संग है। असतसंग तथा सत्संग में यही अन्तर है। तुम जिसकी संगत अधिक करोगे, उसके प्रभावों से प्रभावित होंगे। सत्संग कहते हैं सुरत से, शब्द के संग को धारण करना। गुरु का जीवन सत का जीवन होता है। वह न इन्द्रियों का जीवन है, न मन का, न बुद्धि का। वह तो आध्यात्मिक जीवन है और इसी आध्यात्मिक जीवन को ही सत कहते हैं। असत के संग से असतपना आता है और सत के संग से सतपना।

बद की सुहबत से बनोगे बद मुदाम[1] ।
नेक की सुहबत से होगे नेक नाम ।।
बद की सुहबत से शरारत आयेगी ।
नफ़रत व कीं[2] व अदावत आयेगी ।।
रश्क[3] व बुग्ज़ व शरसे[4] होगा काम तब।
सोच लो दिल में, मिला मौका है अब ।।
नेक की सुहबत बनायेगी सलीम[5] ।
होगे तुम आहिस्ता आहिस्ता हलीम[6] ।।
दिल में आयेगा तुम्हारे अफ़ू[7] व रहम[8] ।
और दिल के तुम बनोगे पाक[9] व नरम ।।
यह है सब दरअसल शाने बशरियत[10] ।
हो अगर इन्साँ, तो हो इन्सानियत ।।
उन्स[11] शफ़कत[12] गर नहीं इंसाँ है क्या ।
ऐसे इंसाँ से तो हैवाँ है भला ।।

जिस समय तुम गुरु का सत्संग करोगे, धीरे-२ ये गुण तुम में आप ही आप उत्पन्न होते चले जायेंगे । हृदय में विशालता आती चली जायेगी और संकीर्णता भाग जायेगी। पक्षपात जाता रहेगा, निष्पक्षता जीवन का स्वभाव बन जायेगा । दूसरों के दोष देखने की आदत नहीं रहेगी, किन्तु उनके गुण देखने की आदत पड़ जायेगी । दिल कोमल हो जाने के कारण, गुरु के जीवन के प्रभाव, उसी प्रकार अंकित होंगे, जिस प्रकार कि नरम मोम बहुत ही आसानी के साथ हर चीज़ के ठप्पे के चित्र को अंकित कर लेता है ।

---

1) सदा 2) कीना 3) ईर्ष्या 4) बुराई 5) वास्तविक या दोष रहित 6) शान्त 7) क्षमा 8) दया 9) पवित्र 10) इन्सानियत 11) प्रेम 12) प्रीति ।

संगत के प्रभाव से, इस प्रकार का स्वभाव बनाना मनुष्य का ध्येय है। परन्तु यह स्वभाव एक दम नहीं उभरेगा। बहुत दिनों से पड़ी हुई आदत एक दम नहीं जाती, समय लगता है।

जब देखो कि तुम गुरु की बातों को समझने लग गये हो और संकेत ही से उनके दिली सारांश को समझने लगे हो, तो समझ लो कि तुम में समानता का गुण उत्पन्न होने लगा है। इसका समझना कठिन नहीं है। गुरु की संगत तुम्हें स्वयं समझा देगी। बाहरी संगत का सम्बन्ध केवल समानता का स्वभाव डालने से है। जिस प्रकार, छोटे बच्चे माँ-बाप की दिली बात को भाँप लेते हैं, या जानवर आँखों को देखकर मनुष्य के दिल के हाल को भाँप जाते हैं, ठीक इसी प्रकार तुम गुरु के संकेतों पर काम करने लग जाओगे। यह बहुत ही सरल नुस्खा है। अगर मनुष्य ध्यान दे, तो अपने स्वभाव में उसे यह गुण मिलेगा। जो व्यक्ति इशारों को नहीं समझते वह अधिकारी नहीं बन सकते।

सैन बैन को जो लखै, तासों कहिये धाय।
सैन बैन बूझे नहीं, तासों कहै बलाय॥

आदतें जब पड़ जाती हैं, तो वे एकदम जाती नहीं। कुछ दिनों का सत्संग करने से वे धीरे-२ चली जायेंगी। गुरु के सत्संग का सिलसिला इसी कारण स्थापित रखा जाता है कि अगर अब नहीं तो कुछ समय के बाद वह अपना रंग लायेगा।

'जाको गुरु ने रंग दिया, कबहुँ न होय कुरंग।
दिन-२ वाणी ऊजली, बढ़े सवाया रंग॥'

जब देखो कि मन की दशा कुछ बदलने लगी है, तब गुरु से आध्यात्मिक साधन की शिक्षा प्राप्त करना शुरू कर दो। जब-२ भी कोई सच्चा अधिकारी गुरु के सत्सग में आता है, गुरु के वचन सुनने से उसके अन्दर अपने आप ही आकाशीय प्रभाव उत्पन्न होने लगते हैं। उसमें चाहे ज्ञान हो या न हो, परन्तु उसमें एक प्रकार की मस्ती आने लगती है और सत्संग सुनने से उसके सभी संशय व भ्रम नाश होने लगते हैं। फिर गुरु अपनी कृपादृष्टि से उसे साधन व अभ्यास की तरकीब बता कर, उसकी सुरत को केन्द्र पर टिकाने का भेद बतला देता है। सुरत में स्वयं ही एकाग्र होने की स्वाभाविक शक्ति है। थोड़ा सा ध्यान देने से ही चित्त की एकाग्रता स्वयं आ जाती है। जिस व्यक्ति में सुरत या तवज्जह जमाने की आदत पड़ जाती है उसको सुरतवंत कहते हैं। साधक सुरतवंत कहलाता है और गुरु का नाम शब्दवन्त है।

बाहरी सत्संग करने से सुरत शब्द का मेल होता है। सुरत चेले में है और शब्द गुरु में। गुरु ने शब्द कहा और चेले ने ध्यान से उसे सुनकर पकड़ लिया। इसीका नाम सुरत-शब्द योग है। योग कहते हैं मिलन या मिलाप को। यदि सुरत शब्द के साथ मिलती है, तब तो वह योग है, मिलाप है। परन्तु जब नहीं मिलती तब वह कुयोग है। गुरु ने नामदान दिया। यह नाम शब्द है, वह अन्दरूनी धुन है जो तुम्हारे भीतर और तुम्हारे घट में हर समय गूँजती रहती है। इस धुन को सुनो। इससे दिल लगाओ। प्रतिदिन के अभ्यास से अनुभव करते चले जाओ कि सुरत किस हद तक शब्द के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध उत्पन्न करती है। आरम्भ में, चाहे कुछ कमी रहे, परन्तु निरन्तरअभ्यास इस कमी को दूर करता चला जायेगा और तुम शब्द-अभ्यासी बन

जाओगे गुरु का आदेश है :—

माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख माहिं।
मनुआ तो दस दिस फिरे, यह तो सुमिरन नाहि ॥

सुरत के रूप को ध्यान से समझो। हाथ में माला लिये हुए वह माला फेरता है, जिभ्या से ज़बानी नाम का जाप करता है, परन्तु मन इधर-उधर भटकता फिरता है। एक चीज़ है जो तीन जगह बट गई है। इस क्रिया के करने से मन में एकाग्रता कभी नहीं आयेगी, मन सदा भटकता ही रहेगा। इसलिये ही केवल सुरत की माला फेरने का ही आदेश है। यह सुरत की माला बाहर से नहीं फेरी जाती। यह तो तुम्हारे घट के ही अन्दर है। इसके फेरने का अभ्यास करो।

'कबीर माला काठ की, लाख जतन का फेर।
सुरत माला को फेरिये, जा में गाँठ न मेर ॥'

ऐ सत्संगियो ! पहिले बहुत दिन तक तुम्हें सुरत की समझ नहीं आयेगी। हाँ मन की समझ अवश्य मौजूद है। इसलिये आरम्भ में मन को चहुं ओर से हटा कर नाम में लगाओ। नाम का सुमिरन करो, ताकि यह मन किसी प्रकार लग जाये। इस मन के लग जाने से, सुरत जग उठेगी और उसके जगने से मन तथा इन्द्रियाँ नीचे गिर जायेंगे। और केवल सुरत ही सुरत ऊपर रहेगी, जो शब्द को सुनती है और सुरत की माला अन्दर ही अन्दर शब्द से सम्बन्ध पैदा किये हुए फिरती रहती है। उसमें इतनी एकाग्रता है कि अब वह शब्द को छोड़कर इधर-उधर नहीं भटकती।

मन थिर तन थिर वचन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कहैं कबीर इस पलक को, कल्प न पावै सोय ॥

सुरत जिस समय शब्द में लग जाती है तो समझ लो कि तुमने अध्यात्म का पहिला मरहला समाप्त कर लिया। मन थिर (स्थिर) हो, वचन थिर हो, तन थिर हो। इन तीनों में स्थिरता आ जाये। इनको बंदिशी अवस्था में जकड़ कर रखो ये बहकने न पायें। नहीं तो ये विद्रोह करेंगे।

सुरत का रुख सदैव शब्द की ओर हो। सुरत शब्द में रत हो जाये। रत कहते हैं रस लेने को। जब सुरत को शब्द की ऐसी चाट पड़ जाती है कि वह इसके आनन्द को छोड़ना ही नहीं चाहती, उसकी रुचि शब्द की ओर ही रहती है। जब तक यह रुचि है, तब तक सुरत है। सुरत की दूसरी मंज़िल निरत कहलाती है।

निरत के दो अर्थ हैं, एक तो नाच उठना और दूसरा रुचि रहित हो जाना। पहिले तो सुरत शब्द को पकड़ती हुई उसके साथ खेल करे फिर उसके चहुँ ओर नाचने लगे। इसकी परिक्रमा को चित्त दे, उससे कभी न हटे। जब आनन्द लेने वाला आनन्द से मिल गया, आनन्द उसके अन्दर आ गया, फिर आनन्द के नशे का आना आवश्यक है। नशे में लयपना होता है। शब्द का अभ्यास करने से, अभ्यासी को इसी प्रकार का नशा आता है और इस नशे को पाकर सुरतवंत चेला, निकटवंत हो जाता है। एक हो जाने के कारण, उसमें स्वयं एकाग्रता आ जाती है और वह वास्तविक अर्थों में अद्वैतवादी बन जाता है। अद्वैत का मतलब है दोपना या दो का न होना। जब तक एक का ख्याल है, तब तक आदमी एकत्ववादी कहलाता है। जब एक के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखने से दो का भ्रम मिट जाता है, तो द्वन्द्व की अवस्था चली जाती है। जब द्वन्द्व की अवस्था चली गई, तो व्यक्ति सच्चे अर्थों में अद्वैतवादी हो

गया। जिस समय सुरत, निरत के दर्जे पर पहुँच गई, तब उस समय व्यक्ति अद्वैतवाद के दर्जे पर पहुँच गया। राधा-स्वामी मत अपने अभ्यास द्वारा पहिले अनेकवाद के झगड़े मिटाता है और फिर एकत्ववाद की श्रेणी में लाता है।

'एक नाम को जान कर, दूजा देय बहाय।
जप तप तीरथ व्रत सभी, सतगुरु चरण समाय ॥'

यह एकत्ववाद है और जब यह दर्जा समाप्त हो गया तो फिर क्या हुआ? वहाँ न एक है, न दो, न तीन, न चार। अद्वैतवाद केवल अनुभव का विषय है कथन का नहीं।

घट में नित धुन होत है, निशिदिन घट के माहिं।
सुरत शब्द मेला भया, मुख की हाजत नाहिं ॥

कुछ दिन लगातार इस प्रकार शब्द का अभ्यास करो। यह अभ्यास तुमको आसानी से सुरतवंत बना देगा। जब सुरत शब्द में समाने लगेगी, तब तन-बदन का होश जाता रहेगा। उस समय तुम निरतवंत बन जाओगे और समझ-बूझ के साथ तुम्हारा अनुभव बढ़ जायेगा और तुम्हारे भीतर मस्ती की अवस्था आ जायेगी। इसलिये आदेश है कि पहिले तुम सुरतवंत बनो, इसके बाद ही निरतवंत बनने के साधन में लगो। तब तुम सार तत्त्व से अलग नहीं रहोगे। गुरु से नाम पाकर अभ्यास में लग जाओ। नाम एक दिन तुम्हें नामी से मिला देगा, फिर जुदाई कहाँ?

सहज भक्ति

परमसन्त हज़ूर दाता दयाल जी महाराज

राधास्वामी आये, प्रगट होये जब से।
राधास्वामी नाम सुनाये तब से॥

भक्ति कठिन नहीं होती, अत्यन्त सरल होती है। अज्ञानी अपनी अज्ञानता के कारण भले ही इस बात को न समझें, परन्तु यह एक सच्चाई है यदि सौभाग्यवश गुरु के सत्संग की कृपा हो जाये तो शिष्य को तब वर्षों की मेहनत की ज़रूरत नहीं रहती। थोड़े दिनों के अभ्यास से ही वह बहुत आगे बढ़ जाता है।

यह जगत् क्या है? यह जगत् नाम और रूप का बना हुआ है। राधास्वामी दयाल ने इस पृथ्वी पर उतर कर, अपना निज रूप शारीरिक चोले में दिखाया और अपना निजनाम सुनाया। मैं नाम लेता हूँ। मेरी रग-२ में 'नाम' समा गया है। मुँह से चाहे कुछ न बोलूँ लेकिन असलियत यह है :—

रोम रोम रग रग मेरी बोली।
राधास्वामी, राधास्वामी घुँडी खोली॥

जिभ्या से नाम लेता हूँ, तो वह नाम एड़ी से लेकर चोटी तक पहुँचता है। वह नाम ही क्या, जिसका प्रभाव पूरे शरीर पर न पड़े। मैंने सतगुरु स्वरूप राधास्वामी के

दर्शन किये। उनके तेजस्वी रूप ने मेरे अन्तर में प्रवेश किया।

अब मुझे काम, क्रोध, मोह, लोभ और अहंकार का भय नहीं रहा, क्योंकि यह सब के सब राधास्वामी दयाल के चरणों में ही अर्पण हो गये। मुझमें अहंकार अब भी है। लेकिन अहंकार किस बात का? मुझे अहंकार इस बात का है कि मैं सत्पुरुष राधास्वामी दयाल का सेवक हूँ और सेवक होने के नाते, हमेशा उनके पीछे-२ चलने की आदत ही हो गई है। अब भी मुझमें क्रोध है। परन्तु क्रोध किस बात पर? क्रोध इस बात पर आता है कि मुझे जिस प्रकार राधास्वामी दयाल की सेवा करनी चाहिए, उस प्रकार की सेवा कर नहीं पा रहा हूँ। मुझमें काम के होने का इन्कार नहीं करता। काम तो सभी में होता है और होना भी चाहिए। काम है क्या? काम कहते हैं इच्छा को, बिना काम शक्ति के किसी का भी काम नहीं हो सकता :—

"काम काम सब कोई कहे, काम न चीह्ने कोय।
जेती मन की कामना, काम कहावे सोय॥"

मैंने अभी-२ बताया कि काम कहते हैं इच्छा को। मैं कामी हूँ, मेरी कामना या इच्छा सदा यही रहती है कि मैं सच्चे अर्थों में हजूर महाराज का सेवक रहूँ। जिस प्रकार एक पतिव्रता स्त्री मन ही मन अपने पति का ही नाम रटा करती है, मैं भी उसी तरह हजूर जी महाराज का नाम रटा करूं।

"मैं अबला पीव पीव करूँ, निर्गुण मेरा पीव।
शब्द सनेही गुरु बिन, और न देखूं जीव॥"

जिस तरह स्वाति की बूंद के विचार में बेचैन पपीहा 'पी' 'पी' करता हुआ आकाश मण्डल में मण्डलाया करता है, ठीक उसी तरह मैं भी गुरु का नाम ले-ले कर अपनी

सारी इच्छाओं के भावों को उनके चरणों पर अर्पण करता रहता हूँ। गुरु मिल गया, अब इच्छा किसकी करूँ? जब स्त्री को पति मिल जाता है, फिर वह किसकी चाह मन में उठावे? चाह तो उस समय उठती है, जब तक गुरु नहीं मिलता।

"गुरु मिले फिर कहा कमाना।"

मैं चकोर की सूरत में अपने गुरु के मुखड़े को रात और दिन देखा करता हूँ। जिस तरह एक भँवरा कंवल के चारों ओर चक्कर लगाता हुआ, उसकी सुगन्ध में मस्त होकर अपने को भूल जाता है, उसी तरह मैं भी गुरु की कंवलरूपी मूर्ति को देखते हुए उनका सच्चा प्रेमी बन गया। उन हो की छबि आँखों में खुभ गई। अब आँख वहाँ से हटती ही नहीं। गुरु के सिवाय और कोई दिखाई ही नहीं देता।

क्रियात्मक रूप से मैं स्त्री हूँ और गुरु मेरा पति है। जिस तरह स्त्री अपने पति के वीर्य को लेकर, उसके रूप का लड़का पैदा कर देती है' उसी तरह मैं गुरु के प्रभाव को अपने अन्दर लेकर उसके नाम, रूप, और स्वरूप को प्रकट किया करता हूँ। अपने आपको छिपा कर अपने गुरु को ज़ाहिर किया करता हूँ।

मुझमें अब भी लोभ है। मैं लालची हूँ। परन्तु लालची कैसा हूँ? लालची इस बात का हूँ कि गुरु को पूरी तरह से अपना कर लूँ और गुरु भी मुझे बिलकुल अपना बना ले। इस बात का लालच सदा बना रहता है कि जब गुरु की निगाह कहीं पड़े तो मेरे ऊपर ही पड़े और पर नहीं और उनके दर्शन का धन, बार-२ मेरे हृदय के खज़ाने में भरता चला जाये :—

गुरु मूरति गति चन्द्रमा, सेवक चित चकोर।
आठ पहर निरखत रहूँ गुरु मुरति की ओर ।।
मुझ में तेरी प्रीति है, प्रेम पियारे कन्त ।
जो हँस बोलूँ और से, तो नील रगाऊं दन्त ।।
नैनों अन्दर आव तू, नैन झांपि तोहि लूँ।
न मैं देखूँ और को, न तोहि देखन दूँ ।।
आजा मेरे हृदय में समा जा ।
बाहर और भीतर तेरे सिवाय कोई न रहे ।।
तू रहे और मैं रहूँ, फिर दूसरे का काम क्या।
मैं निशाँ तू नाम मेरा, दूसरे का काम क्या ।।
इश्क अगर वहदत है, वहदत में नहीं दो का पता।
गर नहीं वहदत तो फिर, उस इश्क का अन्जाम क्या।।

मुझमें अब भी मोह है। मोह कहते हैं आसक्ति को। मुझे गुरु से आसक्ति है। मैं गुरु पर इतना आसक्त हो गया हूँ कि वह मेरी जान है और मैं शरीर की तरह हूँ। आप तो जानते ही हो कि जब मनुष्य की जान निकलने लगती है, तो उसके शरीर को कितना कष्ट होता है। मेरी दशा भी वैसी ही है। मैं अपने गुरु पर इतना आसक्त हूँ कि उनके बग़ैर क्षण भर भी आराम से नहीं रह सकता।

उठ्ठे बैठे खड़े उताने, कहें कबीर हम वहीं ठिकाने।

देखा आपने ! मेरे काम, क्रोध, लोभ, आदि सब के सब गुरु ही के हो गये। मैं जो काम करता हूँ गुरु के लिए ही करता हूँ। लिखता हूँ तो गुरु के लिए, पढ़ता है तो गुरु के लिए। आप लोगों से बात करता हूँ तो गुरु के लिए। अगर किसी चीज़ में गुरु का नाम शामिल थे, तो मुझे खुशी होती है। यदि मेरे लिखने-पढ़ने तथा बोलने-चालने में गुरु रूह बनकर शामिल न हो तो मुझे लिखने में आनन्द नहीं आता।

एक बार की बात है कि जब मैं हैंदराबाद में था, एक पण्डितों की मण्डली मेरे साथ सास्त्रार्थ करने आई। जब तक उस मण्डली के लोग आम बातें करते रहे मैं दिलचस्पी से उनको सुनता रहा। परन्तु जब पक्षपात का ज़िक्र आ गया और वे "मैं" और "तू" पर उतर आये तो मैंने कोई दिलचस्पी नहीं ली और चुप हो गया। एक साहिब ने प्रश्न किया, "आप चुप क्यों हो गये? आपको तो बोलना चाहिए।" मैंने उस महाराज को उत्तर दिया, "मैं जो कुछ भी बोलता हूँ, गुरु के नाम के लिए और केवल गुरु ही के नाम पर। मेरी लड़ाई-भिड़ाई भी गुरु ही के नाम पर होती है जहाँ गुरु का नाम ही न हो वहाँ मैं बोलूँ क्या?

मैं जो कुछ खाता-पीता हूँ, वह सब गुरु के अर्पण होता रहता है। लोग तो यह समझते हैं मैं ग्रास तोड़कर अपने ही पेट में डालता हूँ और पानी का प्याला अपने लिए ही पीता हूँ। यह देखने वालों की भ्रान्ति हैं। एक-२ ग्रास जो मेरे मुँह के अन्दर जाता है और एक-एक घूँट पानी जो पीता हूँ, उसमें गुरु की ही भक्ति का रस रहता हैं। मैं वास्तव में यज्ञ करता हूँ। मेरा खाना-पीना आत्मिक यज्ञ है। जिस तरह यज्ञ में ईश्वर का नाम लेकर आहुति दी जाती है, ठीक इसी तरह से मैं गुरु का नाम लेकर एक-एक ग्रास अपने गले में उतारता हूँ। जिस तरह चम्मच से यज्ञ की अग्नि में घी छोड़ा जाता है, इसी तरह मैं रस ले-ले छर पानी पीता हूँ। कोई नया कपड़ा, बिना गुरु के अर्पण किये हुए मैं अपने शरीर पर नहीं डालता, वह गुरु ही का प्रसाद होता है। मैं जो भी काम करता हूँ, अपने लिए नहीं करता, सब काम गुरु के लिए ही होता है।

"मानिये सकल राम के नाते।"

यह बचन सुमित्रा का है, जिसने बनवास जाने के समय अपने पुत्र लक्ष्मण को कहा था, "ऐ लक्ष्मण! वही स्त्री पुत्रवती है, जिसका पुत्र भक्त हो। राम तेरे पिता और सीता तेरी माँ है। जहाँ राम वहीं तेरा अवध। तू बड़ा भाग्यशाली है तू राम और सीता की सेवा का लाभ उठाता रहेगा। यहाँ तो हज़ारों आदमी उनकी सेवा में रहते हैं, वहाँ अकेला तू ही रहेगा सेवा करने के लिए। मैं तेरी माँ हूँ लक्ष्मण! परन्तु मेरा विचार छोड़कर तू जंगल में जा कर अपने इष्ट देव राम की सेवा और संगत का आनन्द उठा।

संसारी लोग मेरे विषय में यह कह देते हैं कि मैं तो गृहस्थियों से भी अधिक काम करता हूँ, इधर देख उधर भाल! मैं पूछता हूँ कि यह सब मैं किसके लिए करता हूँ? क्या इसमें मेरा स्वार्थ है या केवल गुरु के लिए ही सब करता हूँ। अरे भाई! मैंने तो आज तक अपने रहने के लिए अपना एक मकान तक भी नहीं बनाया। मेरी अपनी न तो कोई जायदाद है न धन-सम्पत्ति। मेरा तो अपना जीवन भी अपना नहीं है, वह तो गुरु का ही है। मेरा कोई काम अपना नहीं है। इस बुढ़ापे में भी इधर का उधर मारा-२ फिरता हूँ क्यों? क्या अपने ही लिए? मेरा मुझमें है ही क्या? हाथ, पाँव, दिल, दिमाग़ सब गुरु ही का तो है। गुरु जिस तरह चाहे मुझे रखे। वह मुझे नरक में ले जाये, चाहे स्वर्ग में। जब अपना कुछ है ही नहीं सब कुछ गुरु का ही है, तो फिर झगड़ा क्या?

मेरे बाल-बच्चे मेरे अपने नहीं, वे राधास्वामी दयाल के हैं जिस तरह मैं उनसे प्रेम का व्यवहार करता हूँ, उसी तरह समस्त सत्संगियों के साथ मेरा व्यवहार है। मेरी

लड़की मेरी नहीं, परन्तु राधास्वामी दयाल की है। वह मुझे तो इसलिए मिली है कि मैं गुरु के नाम पर उसकी सेवा करूँ।

मैं गुरु के प्रेम के मण्डल को अपने घर से बनाना शुरू करता हूँ, परन्तु यह सीमित मण्डल आप ही आप धीरे-२ बढ़ता जा रहा है। वह बढ़ता चला जाये मेरा क्या बिगड़ता है। यदि इसमें ही गुरु की रज़ामन्दी है, तो मैं सर आँखों से उसकी आज्ञा का पालन करूंगा।

इन छोटी-२ बातों को प्रतिदिन के व्यवहार में प्रयोग करने से व्यक्ति जीवन की गढ़त सुगमता से कर सकता है इससे भक्ति का पक्ष सुगम और क्रियात्मक हो जाता है। जिस समय इस शरीर का मन्दिर गुरु के नाम पर अर्पण हो जाता है तो व्यक्ति को न कुछ करना, न धरना। घट के द्वार स्वयं खुलने शुरू हो जाते हैं। कभी सहस्रदल कँवल की सैर है तो कभी त्रिकुटी का दृश्य और कभी शून्य समाधि का आनन्द। कभी भँवरगुफा में इसके नाम की बंसी बज रही है, तो कभी सतलोक में बीन की ध्वनि की सत-सत की आवाज़ सुनाई देती है, जो विशेष अस्तित्व तथा विशेष स्वरूप का आनन्द दे जाती है। यदि इन छोटी-२ तथा साधारण बातों पर विचार करोगे तो बड़ी आसानी से आप अपने जीवन को क्रियात्मक तथा उपयोगी बना सकोगे। यदि ध्यान नहीं दोगे तो कुछ हाथ में नहीं आयेगा।

सत्संग – प्रवचन

परमसन्त परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज

11 दिसम्बर 1970, मानवता मन्दिर होशियारपुर

नूर का पुतला है दिल को, नूर का मखजन बना।
ऐ बशर तारीको तीरा, दहर को रौशन बना॥
इल्म के लालो जवाहर, खीद कर हरसू बखेर।
ऐ बशर सीना तेरा है, अक्ल का मादन बना॥
किस हुमुक में तू पड़ा है, अपने को पहिचान ले।
ऐ बशर फिरता है क्यों, दिन रात तू कौटन बना॥
नूर तेरी है गिजो, और नूर तेरी ज़ात है।
ऐ बशर सीना न तू, अब नाशों का मदफन बना॥
नूर है अब क्यों नहीं, दिखलाता है नूरानियत।
ऐ बशर नूरानी अपना, दिल बना और तन बना॥

राधास्वामी ! आज सत्संग में यह नज़्म पढ़ी गई। जब मैं 1905 में हज़ूर दाता दयाल जी महाराज के चरण-कमलों में गया था, वहाँ मुझे यह सन्तमत मिला था। वाणियों के सार भेद को न समझने के कारण, मुझमें भ्रम, संशय, शंका, सन्देह आदि उत्पन्न होते रहते थे। हज़ूर दाता दयाल जी के पवित्र चरणों में मेरा विश्वास सन् 1905 में

एक दृश्य द्वारा दृढ़ हुआ था। मैंने उसी समय प्रण किया था कि मैं इस मार्ग पर सच्चा होकर चलूंगा और जो अनुभव करूंगा, मैं संसार को बता जाऊंगा। मैं काम कर रहा हूँ। अपना कर्म भोगता हूँ, किसी पर एहसान नहीं करता, अपने कर्म भोगता हूँ। मैंने मानवता मन्दिर होशियारपुर की नींव डाली; सत्संग कराता हूँ और मानवता मन्दिर से "मानव मन्दिर" नाम की एक मासिक पत्रिका भी निकलती है उर्दू समाचार पत्र 'प्रदीप' में भी अपने लेख छपवाता हूँ, जिनका शीर्षक होता है :—

ज्ञान दीजे ज्ञान दाता, ज्ञान के भण्डार से।
सहज छुटकारा मिले, सब को कठिन संसार से ॥

ज्ञान क्या है ? वह ज्ञान यह है कि

नूर का पुतला है दिल को, नूर का मखज़न बना।
ऐ बशर तारीक व तीरा, दहर को रौशन बना ॥

कहने को तो सभी धर्मों वाले कहते हैं कि जीव आत्मा है। हिन्दु कहते हैं कि तू आत्मा है, मुसलमान कहते हैं कि तू नूर है। किन्तु केवल कहने मात्र से यह मान लेने से क्या होता है ? मैं पूछता हूँ क्या कोई अपने नूर रूप को देख भी सकता है ? केवल बात को मुँह से कह देना एक बात है और साधन करना दूसरी बात है। इस नूर के पुतले आत्मा के दर्शन के लिए या आत्मा को प्रकाशवान करने के लिए साधना की आवश्यकता है। यदि कोई यह चाहे कि वह न तो सत्संग करे और न ही साधना करे लेकिन नूर का पुतला हो जाये, तो यह बात असम्भव है। भजन गाने से, पुस्तकें पढ़ने से या व्याख्यान देने से कोई भी अपने नूररूपी पुतले को देख नहीं सकता। यह मैं अपने अनुभव से कह रहा हूँ। मैं जीवन के व्यावहारिक पक्ष को लेकर बात कर

रहा हूँ। कहता तो सारा संसार है, किन्तु नूर के पुतले बनने का उपाय क्या है ? उपाय यह है कि सबसे पहिले सत्संग सुनो। आपको सबसे पहिले अन्धेरे को दूर करना है। अन्धेरा क्या है ? अन्धेरे को दूर करने का मतलब अज्ञान को दूर करना है। अज्ञान कैसे दूर होगा ? अज्ञान सत्संग सुनने से दूर हो जायेगा। सत्संग का अभिप्राय यहाँ गाना, बजाना या कीर्तन करना आदि नहीं है बल्कि सत के साथ संग यानि कि सत से मिल जाना है। इसमें तनिकमात्र भी सन्देह नहीं कि गाने, बजाने तथा कीर्तन का अपना महत्त्व है, इससे मन का आनन्द मिलता है। परन्तु इससे आत्म-स्वरूप प्रकट नहीं हो सकता। वास्तव में, सत्संग तो वहाँ होना चाहिए जहाँ से मानव को असली समझ मिल जाये। यदि गाने-बजाने से, शेर लिखने से, मन्त्र पढ़ने से, कीर्तन करने से मानव के अन्दर प्रकाश प्रकट होता तो हरएक को आत्म-प्रकाश मिल जाता। परन्तु सच्चाई यह है कि सच्ची समझ सच्चा ज्ञान तथा विवेक सद्गुरु के सत्संग से ही मिलता है। यदि किसी को सद्गुरु का सत्संग मिल भी जाये पर उस सत्संग का उस पर कोई प्रभाव न पड़े और वह इसी ही संसार को स्थायी तथा वास्तविक मानकर उसमें ही उलझा रहे, तो वह लाख प्रयत्न करने के बाद पर भी अपने नूररूप के दर्शन नहीं कर सकता। दाता दयाल जी महाराज ने भी यही बात इस शब्द में कही है। जब तक जिज्ञासु के मन में सांसारिक मोह विद्यमान है, वह अपने आपको नूररूप में नहीं ले जा सकता। तो अब प्रश्न उठता है आखिर अपने आपको प्रकाशवान बनाने की विधि या तरीका क्या है ? इसकी विधि है कि जिज्ञासु सबसे पहिले सद्गुरु के सत्संग में जाये, फिर धीरे-२ सांसारिक सम्बन्धों को कम करता जाये। जब ऐसा समझकर जिज्ञासु अपने

अन्तर में साधन करेगा, तब वह अपने अन्तर मैं प्रकाशरूप को देख सकता है या नूररूप बनकर संसार में विचर सकता है। यह है क्रियात्मक या व्यावहारिक रूप। यों तो सभी लोग कहते रहते हैं "हम आत्मा हैं, हम ही सब कुछ हैं।" परन्तु कहना और बात है, अमल करना और बात है। मैं इतना ऊँचा चला गया। परन्तु अब भी जब मैं इस बात को भूल जाता हूँ कि दुनियां एक खेल है, एक स्वप्न है, तो उस समय मैं अपने नूररूप से गिर जाता हूँ। जब मेरे इस व्यक्तित्व को, जिसमें कि मेरी सूरत रहती है कोई कष्ट आ जाता है, तो मेरी सुरत का ध्यान निज रूप से हट कर, शरीर की ओर चला जाता है और तब मैं उसके दुःख का भान करता हूँ, तो उस समय भी वह नूररूप लुप्त हो जाता है।

मैं कितनी सच्ची बात कह रहा हूँ।

सच को वह मानेंगे सच, जिनको सच की कुछ भी जाँच है।
कहने वाले कहते सच हैं, साँच को क्या आँच है।

विद्या, इल्म ज्ञान, सच्ची समझ और सच्चे विवेक के जवाहरात को अपने अन्तर से निकाल कर अमल में लाओ। यह है वास्तविक सारभेद। ज्ञान और समझ कब आयेगी? सच्ची समझ तब आयेगी लब जिज्ञासु अपने अन्तर में सावित्री तथा नूर या प्रकाश का साधन करेगा।

गायत्री मन्त्र सनातन धर्म की कुञ्जी है। जब मानव अपने अन्दर इस सावित्री, गायत्री, प्रकाश या नूर का साधन करेगा, तभी ही वह ज्ञान, समझ और विवेक को प्राप्त कर सकता है। तो क्या अन्तर है सन्तमत, सनातन धर्म या अन्य धर्मों में, जब सभी नूर या प्रकाश को ही सब कुछ मानते हैं। लोग सुनते तो बहुत कुछ हैं, परन्तु साधन

नहीं करते । इस नूर या प्रकाश के साधन को तो हिन्दु धर्म में पहिले नौ या दस वर्ष की आयु में ही बालक को दिया जाता था । परन्तु आज के युग में जो लोग मन्त्र लेते हैं, वह केवल उन्हें पढ़ना या रटना ही जानते हैं, अमल करना नहीं जानते । सन्तों या ऋषियों के मार्ग में यदि कोई महत्त्व है, तो वह ज्ञान, समझ और विवेक ही का है । मैंने आपको गायत्री मन्त्र के विषय में भी बता दिया और दाता दयाल जी महाराज के आज के शब्द के विषय में भी । जब मानव अपने अन्तर में इस सावित्री, प्रकाश या नूर का साधन करेगा, तभी वह ज्ञान तथा विवेक को प्राप्त कर सकता है । इसमें कोई सन्देह नहीं । परन्तु जब तक कोई व्यक्ति अपने नन्तर में इकट्ठा नहीं होगा, अपने अन्तर प्रकाश को प्रकट नहीं करेगा, तब तक उस ज्ञान को बिखेर नहीं सकता । क्योंकि जनसाधारण को अपनी समझ से ठीक तरह से समझ नहीं सकते, इसलिये ऋषियों, सन्तों और प्राचीन सभ्यता ने संसार को यह कहा है कि तुम अनुसरण करो तथा अनुयायी बनो । वह ज्ञान, वह अनुभव, जो हमारे महापुरुषों तथा ऋषियों, महात्माओं तथा सन्तों ने संसार को दिया है, तुम उसका अनुसरण करो, उनके अनुयायी बनो । क्योंकि ऋषियों, महात्माओं द्वारा प्राप्त ज्ञान को तुम स्वयं तो अभी अनुभव नहीं कर सकते, तो यह तो कर सकते हो कि तुम उनके कहे अनुसार अपना जीवन बिताओ । इससे तुम्हें बहुत लाभ होगा । आज के युग में क्या हो रहा हैं ? प्रत्येक व्यक्ति, जो साधनसम्पन्न नहीं है, वह भी अपनी बुद्धि के अनुसार नई-२ युक्तियाँ बतलाता है । वह देश की उन्नति, घरेलू उन्नति तथा सामाजिक उन्नति के लिए अपनी सलाह देता है, मति देता है । इस समय जितना प्रयत्न हो रहा है कि देश में शान्ति आये, समाजवाद आये

या घरों में लोग सुख-चैन से रहें। रोज़ नई-२ युक्तियाँ निकाली जा रही हैं। मैं एक फकीर के नाते आपसे कहना चाह रहा हूँ कि यह सब के सब प्रयत्न निष्फल हो जायेंगे। क्यों ? क्योंकि वह उपाय बताने वाले, शिक्षा देने वाले स्वयं प्रकाश का साधन नहीं करते। जब तक समाज में निःस्वार्थी लोग, प्रकाश का साधन करने वाले लोग आगे नहीं आयेंगे, जो लोगों को सही ज्ञान नहीं दे सकेंगे, जब तक वे लोगों को परमार्थ की शिक्षा नहीं देंगे और यह नहीं बतायेंगे कि मनुष्य शान्ति से जीवन कैसे बिता सकता है, देश का कल्याण नहीं हो सकता, हरगिज नहीं हो सकता। महात्मा गान्धी जैसा महान व्यक्ति भी असफल रहा। क्यों ? क्योंकि महात्मा गान्धी भी प्रकाशरूप का साधन करने वाले नहीं थे। यदि वह साधन करने वाले होते, तो वह जरूर सफल रहते। उनके सिद्धान्त के अनुसार देश भर में हड़तालें तथा घेराव नहीं होते। यदि स्वराज्य प्राप्त कराने का श्रेय बहुत कुछ महात्मा गान्धी ही को जाता है। परन्तु इससे क्या हुआ क्या आज देश में शान्ति है ? महात्मा गान्धी के रामराज्य के स्वप्न कहां गायब हो गये ? आज मनुष्य रोज-२ के अत्याचारों से घबरा उठा है। वह स्वराज्य भी क्या जिसमें नागरिकों के धन, जीवन, सम्पत्ति तथा सम्मान आदि की सुरक्षा न हो, जिसमें व्यक्ति को प्रत्येक समय भय, चिन्ता और संकट रहता हो। जिसको देखो वही नेता बना फिरता है, दूसरों को उपदेश देता फिरता है, किन्तु वह स्वयं तो क्रियात्मक है ही नहीं।

जो व्यक्ति नूर अथवा प्रकाश का साधन करता है या गायत्री का जाप करता है, अर्थात् गायत्री मन्त्र की मति के अनुसार अपने अन्तर में प्रकाश या नूर को उत्पन्न

करता है, उसका जीवन अवश्य सुखमय होना चाहिए। ऐसी ही स्थिति वाले व्यक्ति की मति के अनुसार यदि कोई साधन करे, तो उसका जीवन बदल जाना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति ऐसे महान पुरूष की आज्ञा का पालन ही न करे, तो फिर इसमें अपराध किसका है?

किस हुकुम में तू पड़ा है, अपने को पहिचान ले।
ऐ बशर फिरता है क्यों, तू रात दिन कौदन बना॥

अपने असली रूप को पहिचानो। एक व्यक्ति अपने आप को हिन्दू समझ कर, या मुसलमान समझ कर, सिक्ख, ईसाई या यहूदी समझ कर ससांर में एकता का ढिंढोरा पीटता है। मैं पूछता हूँ कि क्या वह उनमें एकता ला सकता है? नहीं, हरगिज नहीं, क्योंकि वह तो स्वयं नूर रूप हुआ नहीं। वह अपने आप को नूर रूप समझता नहीं। वह तो अपने आप को हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई या यहूदी समझता है। या फिर अपने आप को पिता, पुत्र या भाई समझता है या राजा तथा प्रजा समझता है, या फिर अपने आप को एक बहुत बड़ा धर्मात्मा समझता है वह एकता कैसे ला सकता है? मैं जानता हूँ कि मेरी बात को समझने वाला कोई बिरला ही है। जिस व्यक्ति को यह ज्ञान हो गया कि वह स्वयं ही नूररूप है, उसके विचार या उसकी रेडिएशन को यदि कोई ले-ले, तो संसार के समस्त घरेलू, धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक झगड़े समाप्त हो सकते हैं। मैंने 1947 में यह लिखा था कि शासन में जब तक ऐसे निःस्वार्थ साधक, जो प्रकाश और शब्द का साधन करने वाले हैं, आगे नहीं आयेंगे, देश में शान्ति नहीं होगी।

नूर तेरी है गिज़ा, और नूर तेरी ज़ात है।
ऐ बशर सीना न तू, नाशों का अब मदधन बना॥

ऐ दाता ! आपने मुझे काम दिया था। आप भी करके चले मैं भी करके चला जाऊंगा। न ही आपकी बात को किसी ने समझा और न ही मेरी बात को कोई समझ रहा है। मैं बार-२ यही कहता हूँ कि नूर ही मानव की ज़ात पारब्रह्म या प्रकाश ही हमारा आदि है और वही ही हमारा अन्त है। तुम स्वयं ही नूररूपी आत्मा हो, पूर्ण हो। गलत विचारों को लेकर, अपने आन्तरिक भावों को ख्वाहमख्वाह दूषित विचारों से भरते हो।

नूर है अब क्यों नहीं, दिखलाता है नूरानियत।
ऐ बशर नूरानी अपना, दिल बना और तन बना॥

ऐ मानव तू नूर है, नूरानियत अथवा प्रकाश को प्राप्त कर ताकि तेरा मन और तेरा तन प्रकाशवान हो जाये। यह था आज का सत्संग तुम लोग आ जाते हो। मैं तो अपना कर्म भोगता हूँ, किसी पर कोई एहसान नहीं करता। मैंने प्रण किया था कि जाने से पहिले अपना अनुभव संसार को बता जाऊंगा।

यह अनुभव नया नहीं है। यही हिन्दु धर्म है, यही सनातन धर्म है यही सन्तमत है और यही मानवता धर्म है। जब तक तुम स्वयं नूर नहीं बनते या नूरानी, जो स्वयं नूर बना हुआ है, जिसको सद्गुरु कहते हैं, उसकी आज्ञा के आधीन रहकर, उसकी आज्ञा का पालन नहीं करते, उसके कहे अनुसार नहीं चलने, तब तक तुम्हारा कल्याण नहीं हो सकता।

भारतीय दर्शन में मानववादी दृष्टिकोण

पूर्णधनी मानव दयाल

डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

भारतीय दर्शन का आधारबिन्दु मानव ही है, वह दुःखी मानव जिसकी अनन्त दुःख, व्याधि, वृद्धावस्था तथा मृत्यु से रक्षा की जानी चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सच्ची लगन वाले मानवयादी ऋषियों ने आदिकाल से ही पूरी मानव जाति को ही शान्ति तथा प्रगति का मार्ग दिखलाया है। उन्होंने यह मार्गदर्शन कोरे सिद्धान्तों द्वारा ही नहीं किया, किन्तु आर्यसत्यों को, यानि कि सदा कायम रहने वाले सत्यों को रोज़ के जीवन में लागू करके, आत्मानुभूति के द्वारा ही किया। ऋषभदेव, राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, नानक तथा गान्धी जैसी महान् आत्माओं ने अपने-२ जीवन के उदाहरण लोगों के सामने पेश करके, यह प्रमाणित किया है कि आत्मानुभूति ही मानवता को उच्चतर स्तर तक पहुँचा सकती है।

भारतीय दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें जीवन के आदर्श व्यावहारिक जीवन में लागू किये जाते हैं। वे कोरे सिद्धान्त ही नहीं हैं। पश्चिमीय विचारकों की धारणा है कि भारतीय दर्शन घृणा, संन्यास तथा निराशावाद का प्रचार करता है और भारतीय जनता सदैव

पारलौकिक दृष्टि को सामने रखकर कल्पना के जगत् में विचरती है। उनके अनुनार, वर्तमान के विज्ञान के युग में वह दर्शन अव्यावहारिक है। यह आरोप बिलकुल ही ग़लत है। भारतीय दर्शन के सभी सिद्धान्त अपूर्णता, स्थिति और मृत्यु के विपरीत, पूर्णता, प्रगति तथा अमरत्व को ही स्वीकार करते हैं। भारतीय दर्शन के सिद्धान्त दूरदर्शी, प्रगतिशील, विकासशील और ऐसे नये-२ विचारों और आदर्शों को जन्म देते हैं, जो परम शुभ को लक्ष्य बनाते हैं।

पश्चिमीय संस्कृति ने भौतिक प्रगति पर ज़रूरत से ज्यादा बल देकर, दर्शन के सिद्धान्तों तथा व्यवहार में एक खाई डाल दी है और विज्ञान को धर्म से और तत्त्व-विज्ञान को आचारशास्त्र से, अलग करके, एक विषमता पैदा कर दी है। आज पश्चिम का यह द्वैतवादी दृष्टिकोण, सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक संघर्षों का कारण बन रहा है। आप गौर से देखो कि सम्पन्न तथा उन्नति के शिखर पर पहुँचा हुआ पश्चिम आज कितना दुःखी है। वहाँ मनुष्य का सामान्य जीवन छिन्न-भिन्न हो रहा है। मनुष्य आज एक आणविक आत्महत्या की अवस्था पर पहुँच गया है। विश्व भर में मनुष्य मानसिक शान्ति से वंचित हैं। सन्देह, भय, उग्रवाद तथा निराशा का वातावरण किसी को भी आराम से नहीं रहने दे रहा। सबसे अधिक प्रगतिशील देश, युद्ध छिड़ जाने से, सबसे अधिक ध्वंस का शिकार बन सकते हैं। मैं पूछता हूँ क्या लाभ है ऐसी प्रगति से? क्या लाभ है उस धन-सम्पत्ति का, जिसमें मणुष्य के मन को क्षण भर भी शान्ति न मिले? इन अचानक परिस्थितियों में मनुष्य की प्रगति तथा शान्ति के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता है आध्यात्मिक पुनरुत्थान की। सहस्रों वर्ष पहिले, भारतीय ऋषियों ने जो नैतिक आदर्श बनाये थे,

वे ऐसे व्यापक आदर्श थे, जिनका हर समय और आज भी अनुकरण किया जा सकता है। जिनके अनुकरण करने से आज भी व्यक्ति तथा समाज दोनों का सर्वाङ्गीय विकास हो सकता है। दुःख की बात तो यह है कि आज उस भारत में भी, जहाँ पर सदा आध्यात्मिक जीवन को महत्त्व दिया गया, पश्चिम की अन्धाधुन्ध नकल करके, सिद्धान्त और व्यवहार में विषमताएँ पैदा हो गई हैं।

वर्तमान युग एक ऐसा युग है जहाँ वैज्ञानिक प्रगति ने उसे भौतिक उन्नति के उच्चतम स्तर पर पहुँचा दिया है। भौतिक सुखों ने उसे आराम तो बहुत पहुँचाया है, परन्तु नैतिकता को भूल जाने से मानव इतना अशान्त है कि भौतिक सुख उसे शान्ति नहीं दे सकते। यन्त्रों के आविष्कारों ने एक ऐसी संस्कृति को जन्म दे दिया है, जिसमें धन और सम्पत्ति को मानवी मूल्यों तथा स्थायी भावों (sentiments) से श्रेष्ठ माना जाता है। गाँव में रहने वाला एक व्यक्ति, जिसे शहरों की सभ्यता ने अभी भी नहीं छुआ, आज भी धन और सम्पत्ति की अपेक्षा प्रेम को ही अधिक मूल्यवान समझता है।

मानववादी दृष्टिकोण ही सभी दर्शनों का ध्येय होना चाहिए। मानव का कल्याण ही सभी धर्मों तथा दर्शनों का उद्देश्य होना चाहिए। यूनानियों की शुरू-२ में रुचि सामाजिक समस्याओं को सुलझाने की थी, जबकि भारतीय अन्तरात्मक आत्मा के स्वरूप सम्बन्धी प्रश्नों से बहुत आकर्षित थे। परन्तु दर्शन, चाहे वह आध्यात्मिक दृष्टि से सम्बन्ध रखता हो, या सामाजिक दृष्टि से, मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी मानता हो, इसमें तो किसी को सन्देह नहीं कि उसका सम्बन्ध तो मानव से ही है। डा० राधाकृष्णन के अनुसार "भारतीय दर्शन" की रुचि आकाशवाही न होकर मानव ही

के जीवन से रही है। गीता तथा उपनिषद् जनसाधारण की धारणा से दूर नहीं हैं। आम लोग उन्हें समझ कर जीवन में उतार सकते हैं। गीता तथा उपनिषद् हमारे देश के महान् साहित्य भी हैं और साथ ही साथ महान् दार्शनिक सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति के सिद्धान्त भी। पुराणों में अधिकतर लोगों की दुर्बल बुद्धि के अनुकूल सत्य को, कथाओं तथा कल्पना में, इसलिये प्रस्तुत किया गया है ताकि सत्य लोगों की समझ में आ जाये आम लोगों को तत्त्व-विज्ञान का कठिन काम पुराणों द्वारा बड़ी सफलता से हुआ है।

सारा भारतीय दर्शन, एक ऐसा नमूना है, एक ऐसा चित्र है, एक ऐसी मंजरी है, जिसमें विभिन्न रंगों के, विभिन्न सुगन्धि वाले फूल गुथे हुए हैं। इसमें चार्वाक जैसे भौतिक-वादी सिद्धान्त, जिसका उद्देश्य है जीवन में खाओ, पियो और मौज करो। इस सिद्धान्त के अनुसार, "जब तक मनुष्य जिये सुख से जिये। ऋण लेकर भी अच्छे से अच्छा भोजन खाये, क्योंकि जब एक बार शरीर का अन्त हो जायेगा, तो बस व्यक्ति का अन्त हो जायेगा। यह सिद्धान्त जन्म-मरण के पुनर्जन्म को भी नहीं मानता। चार्वाकों का यह विश्वास है कि शरीर की मृत्यु के बाद मनुष्य मर ही जाता हैं, उसका अस्तित्व किसी भी रूप में नही रहता। इसलिये चार्वाक के अनुयायी विलास के जीवन को बहुत महत्त्व देते हैं।

चार्वाक सिद्धान्त न तो ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करता हैं न मोक्ष की सम्भावना को। इसके अनुसार प्रकृति ही सब कुछ है। प्रकृति के पीछे, प्रकृति से परे तथा प्रकृति के अतिरिक्त किसी भी वस्तु का अस्तित्व नहीं है। इसलिये विश्व में घटने वाली अच्छी तथा बुरी घटनाओं के लिए ईश्वर को मानने की कोई जरूरत नहीं है। सब कुछ प्रकृति

के कारण ही घटित होता है।

चार्वाक के अनुयायी अग्निहोत्र तथा यज्ञ आदि का मज़ाक उड़ाते हैं और वेदों के धार्मिक विधान की प्रताड़ना करते हैं। वे यह घोषणा करते हैं कि वेदों के सिद्धान्त, चतुर ब्राह्मणों द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं, जिसके द्वारा भोले-भाले, सीधे-साधे लोगों को ठगा जा सके। चार्वाक के अनुयायी श्राद्ध आदि में भी विश्वास नहीं रखते। वह कहते हैं कि श्राद्ध की प्रथा चतुर तथा स्वार्थी ब्राह्मणों ने अपनी ही उदरपूर्ति के लिए खोज निकाली है। वे सभी रीति-रिवाजों की भी हँसी उड़ाते हैं। उनका कहना है कि यदि ब्राह्मणों को खिलाया गया अन्न, पितरों को मिलता हैं, तो यात्रा में भोजन साथ ले जाने की क्या आवश्यकता है। यदि स्वर्ग में रहने वाले, पृथ्वी पर अपने पुत्रों द्वारा श्राद्ध से तृप्त हो जाते हैं, तो रेलगाड़ी में साथ में भोजन ले जाने ज़रूरत क्यों है? क्या घर वाले घर पर बैठे हुए गाड़ी में बैठे हुए यात्री को भोजन नहीं पहुँचा सकते या ऊपर की छत पर खड़े हुए व्यक्तियों के लिए नीचे की मंज़िल पर रहने वाले लोगों के द्वारा भोजन पहुँचाना क्यों कठिन है?

चार्वाक यज्ञ आदि की भी हँसी उड़ाते हैं वे कहते हैं कि यदि यज्ञ के लिए पशु की बलि चढ़ाना इसलिये उचित है, क्योंकि बलि चढ़ाये जाने वाला प्राणी सीधा स्वर्ग में जाता है, तो ब्राह्मण लोग अपने ही माता-पिता की बलि क्यों नहीं चढ़ा कर उन्हें शीघ्र से शीघ्र स्वर्ग में पहुँचाने का प्रबन्ध नहीं करते। उनके अनुसार दीन-दु:खियों को सुख पहुँचाने के लिए, धन का व्यय करना, मूर्खता है। नैतिकता, समाजसेवा तथा धर्म को त्याग कर, व्यक्ति को अपने सुख को ही परम लक्ष्य मानना चाहिए, क्योंकि

वासनाओं की तृप्ति और सुख को प्राप्त करना ही मनुष्य का उद्देश्य है। उसके अनुसार, काम की तृप्ति जीवन का पहिला उद्देश्य है और अर्थ या धन काम की तृप्ति का साधन है। धन को एकत्रित करने के लिए व्यक्ति अच्छे या बुरे साधनों को इस्तेमाल कर सकता है, इसमें कोई बुराई नहीं है, क्योंकि चार्वाक के अनुसार, जीवन का परम उद्देश्य वासनाओं की तृप्ति ही है और इस तृप्ति के लिए नैतिक तथा अनैतिक रीतियों को अपनाना बिलकुल न्यायसंगत है। स्वर्ग का आनन्द, स्वादिष्ट भोजन खाने में, सुन्दर-२ नवयुवतियों की संगत में रहने में अच्छे-२ कपड़े पहनने में, इत्र का प्रयोग करने में, फूलों की मालाएँ पहनने में तथा चन्दन आदि के प्रयोग करने में ही है। नरक का दुःख उन कष्टों में है, जो शत्रुओं, शस्त्रों तथा शारीरिक रोगों से उत्पन्न होते हैं। मोक्ष का अर्थ वह भौतिक मृत्यु है, जिसके द्वारा जीव के प्राण का अन्त हो जाता है। पवित्रता तथा अन्य नैतिकता के नियम चतुर व्यक्तियों द्वारा ही बनाये जाते हैं।

चार्वाक यह तो स्वीकार करते हैं कि इस ससांर में केवल सुख ही सुख नहीं है और हमारा जीवन दुःख सुख का ही मिश्रण है। किन्तु उनका कहना है कि इसका यह अभिप्राय तो नहीं कि दुःख तथा कष्ट की उपस्थिति से डर कर, मनुष्य सुख ही न भोगे जो कि उसे उपलब्ध हैं। बुद्धिमत्ता इसी में है कि मनुष्य यथासम्भव दुःखों का आविष्कार करे और बहती गगां में हाथ धो ले। यह विश्व, मानव के लिए एक स्वर्ण अवसर प्रस्तुत करता है और बुद्धिमान व्यक्ति अपने मूल्यवान जीवन का पूरा-२ लाभ उठाते हुए, जैसे-तैसे करके सुख भोगते हैं। भावी जीवन में मोक्षप्राप्ति की दृष्टि रखना महा मूर्खता है। चार्वाक आचार-शास्त्र, तपस्या तथा संन्यास का भी विरोध करता

है। चार्वाक के अनुसार, "हमारी बुद्धिमत्ता इसी में ही है कि हम यथासम्भव विशुद्ध सुख को ही भोगें और दुःख को ऐसे छोड़ दें (जो सदैव सुख के साथ जुड़ा रहता है) जैसे कि एक मछली खाने वाला व्यक्ति मछली का खाने योग्य अंश ले कर, उसके साथ जुड़े हुए कांटों को अलग करके फेंक देता है। यह भी कहा गया है कि किसी भी व्यक्ति को दुःख से डर कर जो सुख मिल रहा है, उसको छोड़ नहीं देना चाहिए। क्या अनाज या चावल बोने वाला व्यक्ति फसल का बोना इसलिए त्याग देगा कि भविष्य में पशु फसल को नष्ट कर देंगे। इसी प्रकार क्या कोई व्यक्ति भोजन पकाना इसलिए बन्द कर देगा कि भिखारी इसके पके हुए भोजन का कुछ अंश मांगने आ जायेंगे। यदि कोई व्यक्ति सुख का निरादर इसलिए करता है कि सुख की खोज में बाधाएँ आती हैं, तो उसे मूर्ख ही समझना चाहिए। यह दृष्टिकोण मूर्खों का है कि ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त विषय-भोग आदि के सुखों को केवल इसलिए त्याग देना चाहिए, क्योंकि सुख के साथ दुःख भी जुड़े हैं। कौन सा ऐसा मूर्ख व्यक्ति होगा जो श्वेत चावलों के मिश्रित धान की फसल को इसलिए दूर फेंक देगा कि उसमें छिलका तथा धूल होती है।

चार्वाक वर्तमान सुख को दूरवर्ती सुख की अपेक्षा श्रेष्ठ मानता है। वर्तमान क्षणिक सुख को ही चार्वाकों ने मनुष्य के जीवन का परम उद्देश्य माना है और उसे तर्क-संगत प्रमाणित करने की चेष्टा की है। इसमें सन्देह नहीं कि चार्वाक सिद्धान्त की दृष्टि से सुख ही परम शुभ है। भविष्य के सुख को वर्तमान के सुख से श्रेष्ठ मानना असंगत तथा अनुचित है, क्योंकि भविष्य संशयात्मक है।

कुछ भी हो इसमें तो तनिकमात्र भी सन्देह नहीं कि

चार्वाक सिद्धान्त अनीश्वरवादी तथा पूर्णरूप से भौतिकवादी होते हुए भी मानववादी सिद्धान्त है। आचारशास्त्र तक का विरोध करते हुए भी चार्वाकों ने यह घोषणा की है कि मनुष्य और केवल मनुष्य ही सभी वस्तुओं का मापदण्ड है Man and only man is the measure of all things) यूनानी ज्ञानवादियों ने बहुत पहिले यह घोषणा की थी कि आम सत्य और व्यापक सत्य नाम की कोई भी वस्तु नहीं हैं। सभी दृष्टिकोण केवल व्यक्तिगत मत हैं और ज्ञान के क्षेत्र में व्यक्ति स्वयं ही आधारभूत नियम है। इसी प्रकार चार्वाकों ने भी इसी बात पर बल दिया है और कहा है कि अनुमान को इसलिये प्रमाण नहीं माना जा सकता, क्योंकि पूरा ज्ञान तो केवल व्यक्तिगत प्रत्यक्ष ज्ञान पर ही आधारित होता है। चार्वाकों ने यह घोषणा की कि कोई स्वर्ग नहीं है, कोई मोक्ष नहीं है और न ही कोई आत्मा है और न ही कोई परलोक है। साधु सन्त बनना, त्रिशूल उठाना, शरीर पर भस्म लगाना इत्यादि केवल रोज़ी कमाने के अड़खन्जे हैं, जो उन लोगों द्वारा किए जाते हैं, जो नपुंसक तथा ज्ञानशून्य हैं।

चार्वाक पूर्णतया मानववादी सिद्धान्त है अनीश्वरवाद में विश्वास नैतिक असूलों की अवहेलना करना, रीति-रिवाज तथा कर्मकाण्ड को बेकार साबित करने की चेष्टा करना इत्यादि से चार्वाकों का अभिप्राय यह था कि मानव ही सब कुछ है और जो भी प्रयत्न किये जायें मानव के कल्याण के लिए ही किये जायें **सर्वसिद्धान्तसंग्रह** में चार्वाक के दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करते हुए यह कहा गया है "बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि सांसारिक सुखों को भोगने के लिए वह कृषि, पशुपालन, व्यापार तथा

राजनैतिक प्रशासन जैसे उचित साधनों का प्रयोग करें।"

सुख तथा शान्ति को प्राप्त करने के लिए अच्छे साधनों को स्वीकार करना, यह स्पष्ट करता है कि यह सिद्धान्त शिक्षित व्यक्तियों के लिए भी स्वीकार करने योग्य है। इसमें तो किसी को सन्देह होना ही नहीं चाहिए कि चार्वाक सिद्धान्त पूर्णरूप से मानववादी है।

हाँ तो मैं कह रहा था कि सम्पूर्ण भारतीय दर्शन एक ऐसा नमूना है, एक ऐसा चित्र है एक ऐसी मंजरी है जिसमें विभिन्न रंगों के विभिन्न सुगन्धि वाले फूल गुथे हैं। इस दर्शन में चार्वाक सिद्धान्त जैसे (जिसका काफी खुलासा मैंने आपको ऊपर दे दिया है, जिससे कि आप समझ जायें कि चार्वाक जैसे सुखवादी सिद्धान्त का भी हम इसलिये तिरस्कार नहीं कर सकते, क्योंकि वह मानववादी सिद्धान्त हैं) भौतिकवादी सिद्धान्त, जैनवाद जैसे अनेकान्तवादी मत और वेदान्त जैसी पूर्णवादी धारणाएँ हैं, जो अनेकत्व में एकत्व तथा विषमता में समता प्रस्तुत करते हैं। चार्वाक तथा जैन सिद्धान्तों की उपस्थिति में भारतीय दर्शन को पूर्णतया आध्यात्मिक और अद्वैतवादी मानना एक बड़ी भारी भूल होगी। यह भी एक बहुत बड़ी भ्रान्ति हैं कि भारतवासी पारलौकिक सुख की कल्पना में संसार के सुख को नहीं भोगना चाहते। मैं आपको दावे से कह सकता हूँ कि प्राचीन भारत में भी मनुष्य के सामाजिक, आर्थिक तथा भावात्मक अंग की कभी भी अवहेलना नहीं की गई। जीवन के चार मूल्यों अर्थ, काम, धर्म, मोक्ष में सबसे पहले अर्थ या धन के मूल्य या पुरुषार्थ का ही नम्बर आता हैं। प्राचीन काल में यह देश भौतिक दृष्टि से प्रगतिशील तथा आर्थिक दष्टि से इतना सम्पन्न था कि लोग इसे "सोने की चिड़िया"

कहते थे। प्राचीन भारत की समृद्धि पर प्रकाश डालते हुए डा० राधाकृष्णन ने लिखा है, "यह देश पत्थर का घड़ना, चित्र बनाना, सोने का,ढालना और सुन्दर से सुन्दर कपड़ा बुनना जानता था। इसने वे सभी ललित कलाएँ तथा औद्योगिक कलाएँ विकसित थीं, जो कि एक सभ्व जीवन के लिए आवश्यक होती हैं। इसके जलपोत समुद्रों के पार दूसरे देशों में जाते थे। उसकी सम्पत्ति जूडा, रोम, मिश्र आदि देशों तक पहुँचती थी। उसकी मानव, समाज, नैतिक तथा धर्म सम्बन्धी धाराएँ, उस समय के अनुसार बहुत ही उत्कृष्ट थीं। यह कहना बिलकुल ही ग़लत होगा कि भारतीय लोग कविता तथा कपोल-कल्पना में ही विचरते थे और विज्ञान तथा दर्शन का बहिष्कार करते थे, यद्यपि यह सत्य है कि उनकी प्रवृति भेद तथा अलगपन की अपेक्षा एकत्व को ढूँढने में अधिक प्रबल थी।" अतः उस समय के दार्शनिकों के लिए यह आवश्यक था कि लोगों की प्रवृत्ति के अनुसार वे लोगों के सामाजिक, आर्थिक तथा आध्यात्मिक जीवन में समन्वय लायें। अर्थ, काम, धर्म तथा मोक्ष सभी भारतीय सिद्धान्तों में स्वीकार किये जाते हैं, यद्यपि इनमें से कुछ एक या एक से अधिक पुरुषार्थों पर दूसरों से अधिक बल देते हैं। यदि चारों मूल्यों को उचित स्थान पिया जाये तो एक स्वस्थ, स्वच्छ, सुखद तथा समरूप समाज की स्थापना हो जाये और मानव का कल्याण हो जाये। चारों पुरुषार्थों का निर्माण किसके लिए और क्यों हुआ था? मनुष्य के ही लिए तो हुआ था और मनुष्य के चहुँमुखी विकास के लिए ही तो हुआ था जिससे कि वह इस संसार में सुखी हो सके।

पूर्व और पश्चिम, दोनों का संगम-स्थान मानव ही है और मानव ही रहेगा। यह कहना बिलकुल ग़लत होगा

कि प्राचीन भारतीय दर्शन में मानव और उसके व्यवहार पर वातावरण के प्रभाव की अवहेलना की गई थी। यदि भारतीय दर्शन की रुचि मानव के कल्याण में न होती, तो युगों पहिले इस देश का अन्त हो गया होता। बड़ी-२ संस्कृतियों का लोप हो गया, परन्तु भारत की हज़ारों साल पुरानी यह संस्कृति आज भी पनप रही है। क्यों? क्योंकि भारतीय दर्शन के सभी सिद्धान्त मानवसमाज की किसी न किसी आवश्यकता की पूर्ति करते रहे हैं। चार्वाक तो पूर्णतया मानव को ही मानता है, ईश्वर को मानता ही नहीं। फिर भी चार्वाक को एक दर्शन माना गया है। चार्वाक के विपरीत, भारतीय दर्शन के सभी सिद्धान्त आध्यात्मिकता पर विशेष ध्यान देते हैं और मोक्ष की प्राप्ति के लिए सन्तुलित जीवन को स्वीकार करते हैं, ऐसा सन्तुलित जीवन न तो इच्छाओं के एकदम दमन की ओर और न ही उनकी निरंकुश तृप्ति को, अपितु उनके सन्तुलन को या व्यवस्थीकरण को वाञ्छनीय आदर्श माना गया है। सन्तुलित जीवन पर इसलिए विशेष ध्यान दिया जाता है, क्योंकि भारतीय दर्शन का दृष्टिकोण सदा मानवीय रहा हैं। यदि भारतीयों को केवल संन्यास की ही शिक्षा दी जाती तो अर्थ यानि कि धन को धर्म द्वारा कमाये धन की भी अवहेलना की जाती और भौतिकवाद कभी पनपने न पाता।

गुरु मध्य, आदि तथा अनन्त है

सत्संग परमसन्त हजूर मानव दयाल जी महाराज
बनवारीपुर, 7-5-1989

गुरु मध्य आदि अनंत अद्भुत, अमल अगम अगोचरम्।
विभु विराजपार अपार निर्गुण, सगुन सत्य विश्वेश्वरम्॥
जेहि मति लखे नहिं गति लखे, यह शुद्ध तत्त्व विचार है।
जो चरण कमल की ओट आया, भव से बेड़ा पार है॥
गुरु विष्णु मूरत शिव की सूरत, गुरु को ब्रह्मा जान तू।
गुरु ब्रह्म हैं परब्रह्म हैं, यह सोच समझ के मान तू॥
कर गुरु संगत रात दिन, नर जन्म अपना सुधार ले।
दे फेंक माया बोझ सिर से, यम का सीस न भार ले॥
सीस दे तन मन को दे, गुरु भक्ति रतन अमोल ले।
राधास्वामी भेद बताया तुमको, हिये तराजू तोल ले॥

राधास्वामी !

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप सद्गुरु रूप सत्संगी भाई और बहनो। यह सारा जगत् मालिक की एक बूंदमात्र अर्थात् एक धारा मात्र है। हम उस मालिक का एक छोटा स्वरूप हैं, उसके अंश हैं। हम इस जगत् में आकर मालिक की एक बूंद ही की लीला में फँस गये। यह लीला भी व्यापक तथा अद्भुत है। इस लीला का भी मकसद है। परमतत्त्वाधार, मालिके कुल, जिसे हम सर्वज्ञ कहते हैं, हम

उसी का एक छोटा सा अंश एवं जीव हैं। जीव को अल्पज्ञ कहते हैं क्योंकि जीव का ज्ञान सीमित है। मालिक का ज्ञान पूर्ण है तथा वह सर्वज्ञ है। मनुष्य की छोटी सी बुद्धि है। हमारी बुद्धि ने इतने आविष्कार कर दिये हैं कि आश्चर्य होता है। वैज्ञानिकों ने जैट वायुयान बना दिये हैं, जिसमें सैकड़ों व्यक्ति हज़ारों मील हवा में उड़ते हैं। यह वायुयान बहुत सुन्दर हैं तथा इतने परिपूर्ण हैं कि उनमें कोई कमी नहीं है। वायुयान का एक्सीडैण्ट भी लाखों वायुयानों में से किसी एक का ही होता है। इस वायुयान के अन्दर ऐसे पुर्जे होते हैं, जिससे वायुयान स्वयं उड़ता रहता है। चालक तो साक्षी बनकर बैठा रहता है। लेकिन इतना सब कुछ होते हुए भी उनके मन में शान्ति नहीं है। यह मेरी बेटी सोनू यहाँ बैठी है, जब भी अमेरिका जाती है, 15 दिन में भारत वापिस आ जाती है। इसका वहाँ पर मन नहीं लगता। यह बात सच है कि जन्मभूमि स्वर्ग से भी अधिक ऊँची होती है। वैसे भी जिसने भारत में जन्म नहीं लिया, उसे मालिक की प्राप्ति नहीं हो सकती। ख़ासकर जो जानता हैं मालिक क्या है? वह परमतत्त्व क्या है? जब उसकी एक बूँदमात्र में इतने बड़े चमत्कार तथा आविष्कार हैं, तो वह स्वयं कैसा होगा? हम और आप जगत् की लीला के अन्दर, चमत्कारों के कारण यह भूल जाते हैं कि लीला करने वाला कौन है? जिसने यह सारा जगत् कल्पना से बनाया है वह कौन है?

जगत् है क्या? यह जगत् मालिक की कल्पना है। यह जगत् मालिक की धारा है। मालिक ने विचार किया और जगत् बन गया। तुम्हारे अन्दर भी वैसी ही विचार की शक्ति है। "जैसा ख्याल वैसा हाल"। जैसा विचार करते हो, वैसे ही हो जाते हो। मालिक के विचार से, मालिक

की धारा से जगत् बना। मैं इसे मालिक की वासना नहीं कहूंगा, बल्कि मालिक की मौज कहूंगा। क्योंकि जहाँ वासना होती है, वहाँ कमी होती है। आजकल के गुरु लोग वासना करते हैं कि वे अमेरिका चले जायें। जब तक अमेरिका न जायें, समझते हैं कि उनके अन्दर कमी है। हमारी आध्यात्मिकता के सामने, तो अमेरिका कुछ भी नहीं है। हम परमतत्त्व अविनाशी हैं। हमारे कण-२ के अन्दर परमतत्त्व अविनाशी की धारा है। आपके अन्दर अविनाशी तत्त्व का अंश है। परमतत्त्व आधार इस जगत् का मालिक है। जिस मालिक को ढूँढने चले हो, उस मालिक की आपको पहिचान होनी चाहिए।

गुरु कौन है? गुरु है परमतत्त्वाधार, राधास्वामी, सर्वाधार, जिसने एक धारा से इतने विशाल जगत् को बनाया है। वहीं आदि है, मध्य है और अन्त है। किसी तरह से हमें सद्गुरु की संगत करके इस भव से, इस जेल-खाने से निकल जाना चाहिए।

गुरु मध्य आदि अनन्त अद्‌भुत, अमल अगम अगोचरम्।
विभु विराज पार अपार निर्गुण, सगुण सत्य विश्वेश्रम् ॥

यह मालिक का स्वरूप है। इन दो लाइनों में 'अमल' शब्द आया है। अमल क्या है? अमल का मतलब है जिस पर कर्मों का मल नहीं चढ़ा हो। तुम अपने आपमें अमल हो, परमतत्त्व हो। तुम जिस मालिक को ढूँढने चले हो, वह तो तुम्हारे अन्दर मौजूद है। कहीं आने-जाने की ज़रूरत ही नहीं है। कहीं और तलाश करने की ज़रूरत ही नहीं है। लेकिन सवाल पैदा होता है कि उस अवस्था पर कैसे पहुँचा जाये, संसार के सभी धर्म, सभी सिद्धान्त भी इसी सच्चाई को मानते हैं कि हम भव के अन्दर आकर फँस

गये। लेकिन फँसने का कारण क्या है ? हम स्वयं ही फँसने का कारण हैं और हम स्वयं ही निर्वाण का कारण बन सकते हैं। तुम्हारे अन्दर संकल्प की शक्ति है, स्वतन्त्रता है, आज़ादी है। चाहो तो तुम इस जगत् में फँसे रहो और चाहो तो निर्वाण प्राप्त कर सकते हो। यह आपकी इच्छा पर है। राधास्वामी मत क्या है ? राधास्वामी मत सनातन धर्म की आख़िरी सीढ़ी है। मालिक को प्राप्त करने का आसान से आसान तरीका है। यह सहज मार्ग है। इस मार्ग में कुछ करने-धरने की ज़रूरत नहीं है, केवल नाम ही आधार है।

नाम तार गूँजत रही भीतर।

तुम्हारे अन्दर नाम की धारा है, मालिक की धारा है, उसे पकड़ कर चलो। लेकिन हम इस धार को पकड़ कर क्यों नहीं चल पाते ? इसका कारण है वासना। जहाँ वासना होगी, वहाँ कमी ही होगी। यदि तुम वासना को अपने स्वार्थ के लिए पूरा करते हो तो वह किया गया कर्म तुम्हें बाँधता है। वही कर्म जब सद्गुरु करता है, तो उसे वह बाँधता नहीं है, क्योंकि वह अपने स्वार्थ के लिए नहीं करता। वह हर बन्धन से आज़ाद है ओर तुम्हें भी आज़ाद करा देगा जब जगत् की वासनाएँ अर्थात् ख्वाहिशात समाप्त हो जायेंगी, तो तुम हर बन्धन से मुक्त हो जाओगे, तब दुनिया की सारी नियामतें तुम्हारे कदमों में गिरेंगी। गुरु वसिष्ठ ने भगवान् राम से कहा था, "हे राम ! बेख्वाहिशी की ख्वाहिश करो।" कल साधना ने मुझसे सवाल किया था कि बेख्वाहिशी की ख्वाहिश भी तो ख्वाहिश है ? यह बहुत सुन्दर सवाल है। हाँ, आम आदमी के लिए बेख्वाहिशी की ख्वाहिश भी ख्वाहिश है, लेकिन यह ख्वाहिश नहीं है।

बेख्वाहिशी की ख्वाहिश करना एक व्यवहारिक, अमली तरीका है, जिस पर चलने से, हम हर प्रकार की ख्वाहिशात से मुक्त होकर पूर्ण हो सकते हैं। यह तरीका है, यह विधि है, यह युक्ति है। जैसे आपको हाथों की मैल उतारनी है। मैल उतारने की युक्ति है साबुन। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि आप हाथों पर साबुन लगाकर बैठे रहें, इससे तो मैल और अधिक हाथों पर जम जायेगी। आप हाथों पर साबुन लगाकर पानी से धो डालो, जिससे मैल भी उतर जायेगा। बेख्वाहिशी की ख्वाहिश तरीका है, एक विधि है। बेख्वाहिशी की ख्वाहिश तब हो जब हम समझें कि दुनिया की जितनी भी ख्वाहिशें हैं, कभी पूरी नहीं हो सकतीं। इनको जितना बढ़ाते जाओगे, उतनी ही बढ़ती जायेंगी। इनकी कभी तृप्ति नहीं होगी। मैं आपको एक छोटी सी कहानी सुनाता हूँ :—

मगध राज्य का शहन्शाह था। सारे भारत पर उसका राज्य था। उसके खज़ाने में रुपये-पैसे, सोना-चाँदी, हीरे-जवाहरात भरे हुए थे। उसके पास किसी किस्म की कमी नहीं थी। एक दिन शहन्शाह अपने दरबार में बैठा था। उसके दरबारियों ने कहा, "महाराज! आपका साम्राज्य सारे भारत में है। किसी चीज़ की कमी नहीं है। बस एक नेपाल का राज्य है, जो आपके आधीन नहीं है। यदि आप उसे भी अपने आधीन कर लें, तो आपका विश्व में नाम हो जायेगा।" शहन्शाह ने सोचा कि दरबारियों की बात ठीक है। शहन्शाह ने सेना को हुकम दिया नेपाल पर चढ़ाई की जाये। नेपाल के लोग सीधे-सादे थे। वह शहन्शाह की तोपों का कैसे मुकाबला करते। मगध की सेना गाँवों को कुचलती चली जा रही थी। नेपाल के कुछ लोग राजा के

पास गये और कहा "महाराज ! मगध के शहन्शाह ने हमारे ऊपर चढ़ाई कर दी है। उनकी सेना गाँवों के गाँव नष्ट कर रही है, हमारी मदद कीजिये।" नेपाल के राजा ने अपनी थोड़ी सी सेना भेज दी लेकिन कुछ ही देर में सारे सैनिक मारे गये। अब नेपाल के राजा को चिन्ता हो गई। उसने मन्त्रियों की एक बैठक बुलाई और कहा "मगध की सेना से कैसे निपटा जाये ? क्या हम सन्धि कर लें ?" उस सभा में एक बूढ़ा ब्राह्मण था। उसने उठकर कहा "महाराज ! मैं यह काम पूरा करूंगा। आप मुझे कुछ तोहफे दीजिये।" उस बूढ़े ब्राह्मण ने चिलगोजे, काजू, पशमीने की शालें आदि अपने साथ लीं और वह मगध के शहन्शाह के दरबार में आ गया। शहन्शाह ने उसे बहुत ही मान-सम्मान से बिठाया और आने का कारण पूछा। बूढ़े ब्राह्मण ने कहा, "महाराज ! हम आपसे हार गये और सुलह करना चाहते हैं। आपके लिए हमारे महाराज ने कुछ उपहार भेंट स्वरूप भेजे हैं।" उपहार में मोटी-मोटी चीज़ें थीं। ब्राह्मण ने कहा, "महाराज ! नेपाल में न सोना है, न चाँदी है, न हीरे जवाहरात हैं। वहाँ के लोग मोटा खाते हैं और मोटा पहनते हैं।" शहन्शाह ने कहा, "ब्राह्मण ! तुम हमारे उपहार ले जाओ।" उपहार में शहन्शाह ने कुछ मशीनें दीं, ज़री के कपड़े दिये। बूढ़े ब्राह्मण ने कहा, "महाराज ! मैं क्षमा चाहता हूँ। हम इन चीज़ों का क्या करेंगे ? नेपाल के लोगों को पता नहीं कि इन चीज़ों का इस्तेमाल कैसे होता है ? हम तो गँवार लोग हैं। यदि आपको देना है तो एक छोटी सी चीज़ दे दीजिये।" शहन्शाह ने कहा "बोलो ! क्या चाहिए।" ब्राह्मण ने कहा, "महाराज ! हमारे यहाँ सोना नहीं होता, आप एक छोटी सी

हड्डी के बराबर सोना दे दीजिये ।" शहन्शाह ने तुरन्त एक छोटी तराज़ू लाने का हुक्म दिया । तराज़ू लाई गई । बूढ़ें ब्राह्मण नें अपनी जेब से एक छोटी सी हड्डी निकाल कर तराज़ू में रख दी । तराज़ू के दूसरी तरफ थोड़ा सा सोना रखा गया लेकिन हड्डी वाला पलड़ा भारी रहा । शहन्शाह ने और तराज़ू मंगाकर काफी सोना रख दिया लेकिन हड्डी वाला पलड़ा फिर भी भारी रहा । सारे खज़ाने का सोना ज़ेवरात तराज़ू में रख दिये, फिर भी पलड़ा हल्का रहा । शहन्शाह हैरान था । उसने कहा "यह कोई चमत्कार है ।" ब्राह्मण ने कहा, "महाराज ! यह कोई चमत्कार नहीं है । यह हड्डी एक लालची व्यक्ति की खोपड़ी का छोटा सा हिस्सा है । महाराज ! आप सम्पन्न हैं । आपके पास सब कुछ है । फिर भी आपको नेपाल जीतने की हवस हुई । जब कि नेपाल में तो कुछ होता नहीं । महाराज ! आप हमें क्षमा करें ।" शहन्शाह ने सोचा कि मैं कहाँ तक हवस के पीछे भागता जाऊंगा ?" उसने ब्राह्मण को अपना गुरु माना और नेपाल को आज़ाद कर दिया और शहन्शाह स्वयं धर्म के रास्ते पर चलने लगा ।

हम आपको बेख्वाहिश की ख्वाहिश में धीरे-२ ले जायेंगे । सन्तमत की विशेषता के अनुसार आपको कुछ भी छोड़ने की ज़रूरत नहीं है, न आपको घबराने की ज़रूरत है । आप चाहते हैं कि आपको सब कुछ मिल जाये । अरे आपको सब कुछ मिलेगा । मैंने आपको पहिले बताया था :—

गुरु दाता दानी अपार महा, याचक जग जीव हुए सारे ।
गुरु अर्थ देत गुरु धर्म देत, गुरु काम मोक्ष देने हारे ॥

सारी दुनिया याचक है, माँगने वाली है । गुरु दाता कृपाल है, महान है और दयाल है । वह क्या देता है ?

गुरु अर्थ देन गुरु धर्म देत, गुरु काम मोक्ष देने हारे।

तुम्हारी आर्थिक अवस्था भी ऊँची हो जायेगी। तुम्हारा सिर दुनिया में भी ऊँचा हो जायेगा। वह ऐसा अर्थ देता है, जो धर्म बन जाता है और दूसरों को फायदा पहुँचाता है। धन घर के अन्दर रखने के लिए नहीं होता। धन से कल्याण का काम करो। गुरु तुम्हारे धन का भूखा नहीं है।

शिष्य को ऐसा चाहिए गुरु को सब कुछ देय।
गुरु को ऐसा चाहिए शिष्य से कुछ न लेय॥

मतलब क्या है कि जब गुरु से प्रेम करोगे उसे अपना इष्ट बनाओ, तब तुम्हें बेख्वाहिशी की ख्वाहिश हो जायेगी। तुम्हें सिर्फ गुरु ही गुरु दिखाई देगा। गुरु के पास क्या कमी है, जो तुम से लेगा। वह तो देने के लिए आया है। वह तो तुम्हें दयाल देश ले जाने के लिए आया है। तुम काल देश के अन्दर हो। उसको तुम्हारी किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं है। वह तुमसे दूसरों के उपकार के लिए लेता है। स्वामी जी महाराज ने कहा है :—

धन की सेवा है यह भाई।
गुरु सेवा में खर्च कराई॥
गुरु नहिं भूखा तेरे धन का।
उन पै धन है भक्ति नाम का॥
पर तेरा उपकार करावे।
भूखे प्यासे को दिलवावें॥
उनकी मेहर मुफ्त तू पावे।
जो उनको प्रसन्न करावे॥

गुरु तुम्हें धन देता है, ऊँचा उठाने के लिए। तुम्हें कल्याणकारी बनाने के लिए। आम आदमी जो धन लेता है,

वह धन का लोभी हो जाता है। केवल धन को एकत्रित करने में ही लगा रहता है। जब मरता है तो सर्प बनकर धन के ऊपर बैठ जाता है। गुरु तुम्हें अर्थ देता है और अर्थ के साथ-२ धर्म भी देता है। तुम्हारी कामनाओं की तृप्ति कराता है। यदि काम की तृप्ति प्रेम में परिवर्तित हो जाये, तो पति-पत्नी में कभी भी झगड़ा न हो। लेकिन वह भी स्वार्थ है। लेकिन गुरु तुम्हारी कामनाओं को परिवर्तित करके इष्ट की तरफ लगा देता है, उच्च आकांक्षा बना देता है। इस आकांक्षा से तुम्हारा मानव के साथ प्यार होगा। सारा जगत् तुम्हें प्यार करेगा। गुरु लोक और परलोक दोनों को मिला देता है। यह गुरु की महिमा है। यदि जगत् से बेख्वाहिशी की ख्वाहिश करनी है, तो उस मालिक, परम-तत्त्वाधार को अपना इष्ट बनाओ। जो तुम्हारे अन्दर भी है और बाहर भी ज्ञानदाता गुरु के रूप में है।

गुरु मध्य आदि अनन्त अद्भुत, अमल अगम अगोचरम्।

गुरु आदि है, मध्य है और अन्त है। वह अमल है। उस पर कर्मों का मल नहीं है। यही अन्तर है आम आदमी में और सद्गुरु में। सद्गुरु जो कर्म करता है, लगता है कि वह आम आदमी की तरह कर रहा है लेकिन उसका कर्म उसे बाँधता नहीं है, न ही किसी दूसरे को बँधवाता है। तुम्हारे कर्म कटाता है। गुरु वह नहीं जो शिष्य को बाँधे। उसको तुम्हारे तन, मन, धन की आवश्यकता नहीं है। वह तुम्हें दयाल बनाने के लिए आया है। उसको किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं। अगर वह अपने धन के लिए, अपने मान के लिए, अपनी इज्ज़त के लिए, यह सब पाखण्ड करता है, तो ऐसे गुरु को तुरन्त छोड़ देना चाहिए।

हरहिं शिष्य धन न रोग हरहीं।
सो गुरु घोर नरक में परहीं॥

ऐसे गुरु को तुरन्त त्याग देना चाहिए। अमल अगम अगोचरम्। वह अमल इसलिये है कि उस पर कर्मों का मल नहीं है। वह जो काम करता है, वह अपनी ख्वाहिश के लिए नहीं करता, बल्कि तुम्हारी ख्वाहिश को बेख्वाहिश बनाने के लिए, तुम्हारे कर्मों को कटाने के लिए करता है। वह तुम्हें अपने जैसा बना देता है। वह जगत् का मालिक है। ऐसे गुरु के सम्पर्क में जब तुम रहोगे, तुम वैसे ही हो जाओगे और तुम्हारी दुनिया की सारी ख्वाहिशात अपने आप समाप्त हो जायेंगी। आपको किसी चीज़ की कमी नहीं रहेगी।

जेहि मति लखे नहिं गति लखे यह शुद्ध तत्व विचार है।
जो चरन कमल की ओट आया, भव से बेड़ा पार है॥

तुम तो गुरु के कपड़ों को, टाई को देखते हो। सोचते हो कि अमेरिका होकर आया है। अरे I. C. Sharma तो रहा नहीं वह तो सद्गुरु का स्वरूप हो गया। फकीरमय हो गया। फकीर में बेख्वाहिशी की ख्वाहिश है।

हद से टपे सो औलिया, बेहद टपे सो पीर।
हद बेहद दोनों टपें, वाको कहें फकीर॥

हद से टपने का मतलब है कि शरीर से निकल कर मन के अन्दर स्थित हो जाना। मन के अन्दर टिक जाने से सिद्धिशक्ति आ जाती जाती है। सिद्धिशक्ति से व्यक्ति भविष्य की बात बता सकता है। चमत्कारी घटनाएँ होती है। मन में स्थित का मतलब है कि बेहद में आ जाना। मन से आगे प्रकाश में जायेगा। प्रकाश के अन्दर जाने से वह आत्मा में ठहर गया। आत्मा में ठहरे हुए व्यक्ति को आत्मा का ज्ञान है। वह दूसरों को रास्ता दिखा सकता है 'बेहद टपे से पीर' उसे गुरु मान लो। लेकिन वह अभी गुरु

पूरा नहीं है, लेकिन वह पीर है। "हद बेहद दोनों टपें, वाको कहें फकीर" जो हद, बेहद दोनों से निकल गया, आत्मा से निकल गया, अपनी हस्ती में आ गया, उसको फकीर कहते हैं। उसका मुकाबला इस जगत् में किसी भी चीज़ से नहीं किया जा सकता। इसलिये उसको कहते हैं कुछ नहीं कुछ नहीं कुछ नहीं। कुछ नहीं का मतलब है कि यह शरीर नहीं है, वह मन नहीं है, वह तुम्हारा रूप नहीं है, तुम्हारी जाति का नहीं है, लेकिन वह सबके अन्दर हैं। जब तुम्हें उस मालिक के ज्ञान का आभास हो जायेगा, तो तुम आत्मिक जीवन में आओगे। जो फकीर है उसका विचार 'शुद्ध तत्त्व विचार' है, वह अपने आपको सबमें पहिचान रहा है, ऐसा भक्त फकीर है।

जो चरन कमल की ओट आया, भव से बेड़ा पार है।

ऐसे निर्बन्ध पुरुष के चरणों की छाया में रहो। निर्बन्ध पुरुष इसलिये नहीं कि उसका बड़ा भारी डेरा है, अरे वह तो खुद ही फँसा हुआ है इसमें।

न अपना नाम तुम रखना, न कोई भी निशाँ रखना।

लोग मकान बनवाते हैं और मकान के ऊपर अपना नाम लिखवा देते हैं। जब तुमने अपना निवास यहाँ बना लिया, तो तुम ऊपर कैसे जाओगे ? तुम्हारी साँस मकान में ही अटकी रहेगी। यह बात वही कह सकता है जिसकी आनन्द परमानन्द की अवस्था है।

'जो चरन कमल की ओट आया, भव से बेड़ा पार है।'

जब तुम उसके संग लग गये, उसके निकट आ गये, तो तुम उस जैसे बन जाओगे। जैसे मैं फकीर के निकट आकर फकीरमय हो गया।

गुरु विष्णु मूरत, शिव की सूरत गुरु ब्रह्मा जान तू।
गुरु ब्रह्म हैं परब्रह्म हैं, यह सोच समझ के मान त ॥

भगवद्‌गीता में लिखा है कि जब ब्रह्मा जी ने सृष्टि रची, तो उन्होंने कहा "हे मानव ! तुम देवताओं को यज्ञ करके कुछ दिया करो। देवता तुम्हें बदले में अच्छी-२ चीजें देंगे। तुम दोनों आपस में मिलकर रहो। जगत् के अन्दर आनन्दमय रहो।" ब्रह्मा जगत् को उत्पन्न करने वाला, जगत् का विधाता है। लेकिन ब्रह्मा भगवान् विष्णु की नाभि से निकले हैं, इसीलिये ब्रह्मा-विष्णु के आधीन हैं। यह ब्रह्मा विराट् रूप में भी दिखाई देता है। इसकी शक्ति कण-कण के अन्दर, परमाणुओं के अन्दर चल रही है। भगवान् कृष्ण ने यही विराट् रूप अर्जुन को दिखाया था। लेकिन यह विराट् स्थूल है, उसके पीछे एक और शक्ति है – सूक्ष्म शक्ति है, जिसे विष्णु या ब्रह्माण्डी मन कहा गया है। यही शक्ति स्थूल जगत् का पालन-पोषण करती है और उसे बनाये रखती है। किन्तु यह अपने आप में पूर्ण नहीं है, क्योंकि इसका आधार मालिक का कारण शरीर एवं ब्रह्माण्डी आत्मा है, जिसे शिव कहा गया है। इस प्रकार जो जगत् स्थूल रूप में प्रकट होता है एवं जिसकी सृष्टि होती है, वह सूक्ष्म रूप से स्थित रहता है एवं उसकी स्थिति होती है। अन्त वही जगत् कारण रूप ब्रह्माण्डी आत्मा में विलीन हो जाता है। जगत् की यही तीन हालतें सृष्टि, स्थिति और प्रलय कहलाती है किन्तु ये हालतें स्वयं उसी मालिके कुल सर्वाधार मध्य, आदि, अनन्त अविनाशी, सद्‌गुरु राधास्वामी दयाल की धाराएँ हैं। मानव उसी राधास्वामी दयाल का साक्षात् रूप है। उसका शरीर ब्रह्मा है, उसका मन विष्णु है, उसकी आत्मा शिव है और वह स्वयं इन तीनों का आधार अविनाशी साक्षी परमतत्त्व विशुद्ध आत्मा एवं विशुद्ध सुरत सद्‌गुरु के सम्पर्क में आने से इसी अविनाशी तत्त्व का अनुभव हो जाता है और सत्संगी

को अभयदान मिल जाता है। इसी अभयदान की प्राप्ति के लिए कहा गया है :—

कर गुरु की संगत रात दिन नर जनम अपना सुधार ले।
दे फेंक माया बोझ सिर से यम का शीश न भार ले॥

गुरु की रात-दिन संगत का मतलब पूर्णतया गुरुमुख रहना और हर समय उसी का सुमिरन करते हुए, अपने हर काम को उसी के सुपुर्द करते रहना है। इस प्रकार से बेख्वाहिशी की ख्वाहिश गुरु की पराभक्ति से सहज में प्राप्त हो जाती है और मनुष्य कर्म के बन्धन से आज़ाद हो जाता है। इसलिये मैंने कहा है कि राधास्वामी मार्ग त्याग का नहीं बल्कि ग्रहण का मार्ग है। इस पराभक्ति में जो कुर्बानी दी जाती है, वह आगे चलकर पूर्णता में बदल जाती है। इसलिये दाता दयाल जी के इसी शब्द में कहा गया है :—

तू शीश दे तन मन को दे गुरु भक्ति रतन अमोल ले।
राधास्वामी भेद बताया तुमको हिये तराज़ू तोल ले॥

यहाँ पर शीश देने का मतलब मरना नहीं है और न ही तन-मन को अर्पित करने का अर्थ शरीर या मन को त्याग देने का है। पराभक्ति में भक्त अपने इष्ट में इस प्रकार लीन हो जाता है कि वह तन, मन और आत्मा से ऊपर उठ जाता है और सच्चिदानन्द से परे सुख-दु:ख से परे परमसुख में ओत-प्रोत हो जाता है। इसी को ही भक्ति का अनमोल रतन कहा गया है। सद्गुरु से इस ज्ञान को प्राप्त करना प्रारब्ध है, किन्तु उस पर अमल करना या न करना साधन के संकल्प की स्वतन्त्रता है। इसलिये गुरु से यह भेद जानने के बाद भी शिष्य को यह आज़ादी दी गई है कि वह रास्ते पर चलने के लिए अपना निर्णय आप दे

अर्थात् इस सौदे को पूरा करने के लिए अपने दिल के तराज़ू में इस सच्चाई को तोल ले। इन शब्दों के साथ मैं आज का सत्संग समाप्त करता हूँ।

सबको राधास्वामी !

सत्संगियों से विनम्र अनुरोध

सत्संगी जन से हमारा विनम्र अनुरोध है कि सत्संग-दौरों के समय परमसन्त सद्गुरु हजूर मानव दयाल जी महाराज के साथ सेवा में रहने वाले लोगों के न तो कोई सत्संगी पैर छूने की कोशिश करे और न ही उन्हें किसी प्रकार का भेंट-नजराना आदि देने की कोशिश करें। आशा है सत्संगी जन इसे गलत न समझेंगे और न ही इस नियम का उल्लंघन करेंगे क्योंकि ऐसा करना नियम व सिद्धान्त के विरूद्ध हैं। मत्था टेक व भेंट-चढ़ावा केवल परम हजूर महाराज के कमल-चरणों में ही समर्पित होना उचित है।

जनरल सेक्रेटरी

मासिक सन्देश

परमसन्त सद्गुरु हजूर मानव दयाल
डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश,

परमप्रिय सत्संगियो :

राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई !

पिछले मासिक सन्देश में मैंने आपको सत्संग तथा मानव मन्दिर की गतिविधि के बारे में 29 अक्टूबर तक सूचना दी थी। संक्षेप में 29 अक्टूबर से 23 नवम्बर तक, मैं अधिकतर होशियारपुर में रहा। क्योंकि 18, 19 नवम्बर को परम दयाल जी महाराज के जन्मदिन के उपलक्ष्य में मानवता मन्दिर होशियारपुर में विशाल सत्संग आयोजित किया गया। हाँ इसी दौरान में हमने जयपुर और भीलवाड़ा का दौरा अवश्य किया। हम भीलवाड़ा केवल दो दिन के लिए देहली से रेलगाड़ी के द्वारा गये। भीलवाड़ा के सत्संगी बड़ी उत्सुकता से, मेरे वहाँ पहुँचने की प्रतीक्षा कर रहे थे, क्योंकि भीलवाड़ा के सम्बन्ध में भी पिछली बार दौरे की सूचना ग़लत छप गई थी और मैं भीलवाड़ा नहीं पहुँच सका था।

भीलवाड़ा राजस्थान का बहुत पुराना केन्द्र है। मैं हमेशा भीलवाड़ा सत्संगों के लिए जाता रहा हूँ। इस केन्द्र

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

की विशेषता यह है कि इसे परम दयाल जी के प्यारे कृषक जी महाराज ने स्थापित किया था । यहाँ के सभी सत्संगी प्रेम और भक्ति में सने हुए हैं। परम दयाल जी महाराज के द्वारा नियुक्त श्रीमती नीना सर्राफ और श्रीमती मोहिनी बाई महिला आचार्या हैं और कई वर्षों से सत्संग की प्रक्रिया चला रही हैं। कृपक जी के सुपुत्र आचार्य भूपेन्द्रमणि जी तथा उनके सुपुत्र श्री तेजेन्द्रमणि जी गुप्ता भीलवाड़ा केन्द्र की रूहेरवां हैं। आचार्य भूपेन्द्रमणि जी को मैंने दो वर्ष पूर्व आचार्य पद पर नियुक्त किया था। वह भीलवाड़ा में सत्संग देते हैं और बहुत सुन्दर शब्दपाठ करते हैं। श्री तेजेन्द्रमणि गुप्ता मेरी दृष्टि में निष्काम कर्म-योग की पराकाष्ठा पर हैं और अधिकतर मस्ती में रहते हैं। जब भी मैं भीलवाड़ा जाता हूँ उनकी मस्ती चरमसीमा पर पहुँच जाती है। उनका प्रेम और ज्ञान का मेरे साथ आदान-प्रदान विशेष महत्त्व रखता है। वह न ही केवल भीलवाड़ा के सत्संग केन्द्र को हर प्रकार से सफलतापूर्वक चला रहे हैं, बल्कि वहाँ पर समाज-सेवा का कार्य भी कर रहे हैं। यूँ तो भीलवाड़ा के सभी सत्संगी परिवार, सर्राफ परिवार श्रीमती मोहिनी बाई का परिवार, श्रीमती बुद्धबाई का परिवार और स्वर्गीय श्री हरि भगत जी का परिवार पूर्णतया श्रद्धा और भक्ति से ओत-प्रोत हैं। इन्हीं के विशेष भक्तिपूर्ण व्यवहार के कारण भीलवाड़ा के और आसपास के नये और पुराने सत्संगी मानवता धर्म पर चल रहे हैं और भीलवाड़ा के वातावरण को पवित्र बना रहे हैं।

मेरे वहाँ पहुँचने से पहिले मेरे परमप्रिय आचार्य कैप्टन लाल चन्द दान्दू से भीलवाड़ा पहुँच चुके थे। उन्होंने अपने पहले सत्संगों से भीलवाड़ा के सत्संगियों को बहुत

प्रेरणा दी और उनकी श्रद्धा और भक्ति को मज़बूत किया। दो दिन के सत्संगों में, जो श्री तेजेन्द्रमणि गुप्ता के घर पर हुए, बाहर से आने वाले और भीलवाड़ा के सैकड़ों सत्संगियों ने लाभ उठाया। इस बार भीलवाड़ा के कुछ प्रतिष्ठित नये व्यक्तियों ने भी नाम-दान लिया। मैं पहिले की भाँति कुछ सत्संगियों के घर पर भी गया। तीसरे दिन हम प्रातःकाल करीब 7 बजे एम्बैसी कार के द्वारा ज़यपुर के लिए रवाना हो गये। रास्ते में हम गुलाबपुरा के पास श्री तेजेन्द्रमणि जी के छोटे भाई के निवासस्थान पर थोड़े समय के लिए रुके। इसी प्रकार दूदू पर हम जलपान के लिए करीब 20 मिनट तक रुके। जब मैं दूदू से रवाना होने से पहिले कार में बैठा, तो शब्दानन्द जी ने मुझे मेरे जूते पहनाये। मैंने उनसे पूछा, "कहीं आपने मेरे दायें पैर का जूता बायें पैर में और बाँयें का दायें पैर में तो नहीं पहना दिया ?" उन्होंने मुस्कराते हुए लहज़े में कहा, "हजूर मैंने ऐसा नहीं किया।" मैंने उनकी बात पर विश्वास करते हुए, अपने पाँव की ओर न देखा और आराम से अपनी सीट पर बैठा रहा।

ठीक एक घण्टे के बाद हमारी गाड़ी मेरे छोटे भाई महाराज कृष्ण शर्मा के घर बंगला नं० 16-सी, मोती मार्ग जयपुर पर रुकी। गाड़ी की आवाज़ सुनकर श्री महाराज कृष्ण और कुछ सत्संगी बाहर आ गये। मैं गाड़ी से उतरा और बंगले में दाखिल हुआ किन्तु मैं चन्द ही कदम चला था कि मेरे पाँव बहुत दुखने लगे। जब मैंने अपने पाँव पर निगाह डाली, तो वास्तव में क्या देखा ? देखा कि मेरा दायें पैर का जूता बाँयें पैर में और बाँयें पैर का जूता दायें पैर में पहना हुआ था। मैंने तुरन्त कहा, "शब्दानन्द जी आपने मस्ती में जूते पहनाने में वह भूल कर दी, जिसका मुझे शक

था। मेरे छोटे भाई श्री महाराज कृष्ण ने जब यह सुना और उसे पता चला कि शब्दानन्द जी ने दूदू पर मुझे जूते पहनाये थे, तो उन्होंने मुस्करा कर कहा, "यह दुनियावी भूल तो आवश्यक थी क्योंकि जूते पहनाने वाला और पहनने वाला दोनों इस जगत् से परे रहते हैं।" मैंने आपको यह बात प्रसंगवश सुना दी है। वास्तव में, मालिक का सच्चा प्रेमी इस जगत् में रहता हुआ भी यहाँ नहीं रहता। वह सभी कर्म करता हुआ भी, कर्म के बन्धन में नहीं पड़ता। उसकी अवस्था उस कमल के फूल की तरह होती है जो जल में रहता हुआ भी, जल से अछूता रहता है।

यही राधास्वामी मत अर्थात् सन्तमत की विशेषता है। यह रास्ता न संन्यास या ज्ञान का है और न प्रवृत्तिमार्ग है, जिसमें फँसकर जीव कभी भी जन्म-मरण के चक्कर से नहीं निकल सकता। पहिला रास्ता धीरे-२ जगत् की सभी वस्तुओं को त्याग कर, केवल एक ईश्वर को आधार मान कर, संसार में अनेकत्व के पीछे एकत्व को देखना है। दूसरा रास्ता, एक के आगे दाँई तरफ शून्य बढ़ाते-२ जगत् के फैलाव में फँस जाना है। दूसरे शब्दों में पहिले रास्ते से जीव उस ज्ञान को प्राप्त कर लेता है, जिसमें इच्छाओं की कोई कीमत नहीं रहती और दूसरे रास्ते में इच्छाओं की तृप्ति करते-२ जीव माया और काल का शिकार बन जाता है। यदि व्यक्ति एकत्व को समझ जाये और मालिक को ही सर्वाधार मानकर, सांसारिक द्वन्द्व से, लाभ-हानि, सुख-दुःख, जय-पराज्य में समान रहता हुआ, एकत्व से भी परे चौथे पद की तलाश करता रहे, तो वह मंज़िले मकसूद पर पहुँच सकता है। यदि वह सिर्फ एकत्व-२ का सुमिरन ही करता रहेगा, तो वो एक से अनेकत्व की

ओर खिंचा जायेगा। एक और एक ग्यारह हो जायेंगे और एक ज़ीरो एक, एक सौ एक हो जायेंगे और वह फिर मायाजाल में फँस जायेगा। इसलिये जिस साधक को परम लक्ष्य पर पहुँचना होता है, वह एक को भी त्याग देता है। इसलिये दाता दयाल जी ने एक शब्द में कहा है :—

'एक को त्यागो ज्ञान दृष्टि से, सतपद ध्यान जमाओ,
साधो गुरु शरणागत आओ।'

पराभक्ति या गुरु की शरणागत में आने का मार्ग न तो संन्यास है और न प्रवृत्ति मार्ग है, न वह मायामत है न वह ज्ञानमत है। मायामत का रास्ता बाँई तरफ है और ज्ञानमत का रास्ता दाईं तरफ है। मायामत इंगला नाड़ी की तरफ झुकता है और ज्ञानमत पिंगलानाड़ी की तरफ झुकता है। यद्यपि ज्ञानमार्ग में पहुँचना अच्छी बात है और जगत् के अन्दर हर वस्तु में एक ईश्वर का अनुभव करना द्वैत अवस्था के मुकाबले में अच्छा है। फिर भी इस रास्ते में एक के विचार से अनेकत्व के विचार में पड़ जाने का खतरा होता हैं। राधास्वामी मत दोनों के बीच का रास्ता अपनाता है और न ही केवल साधक को एक से आगे सतपद की ओर जाने का इशारा करता है, बल्कि उसे अमल के द्वारा चौथे पद पर पहुँचा देता है। इसलिये यह रास्ता इड़ा और पिंगला के बीच सुषुम्ना नाड़ी से ऊपर को ले जाता है और अन्त में सुरत को निजधाम में पहुँचाता है। सर्वाधार, राधास्वामी दयाल से मिला लेता है। इसमें ज्ञान की अपेक्षा वास्तविक अनुभव पर ज़ोर दिया जाता है। कबीर साहिब ने कहा है :—

"यह करनी का भेद है, ना ही बुद्धि विचार।
कथनी तज करनी करे, तब पावे कुछ सार॥"

मैंने तो आपको कई बार बताया है कि अभ्यास के

द्वारा अन्दर के दर्जों से गुज़रते हुए, पराशब्द में लीन हो जाने के बाद भी, सद्गुरु के सत्संग की आवश्यकता रहती है। गुरु की आज्ञा से वाचक ज्ञान यानि कि ज़बानी जमा-खर्च के रास्ते को छोड़कर जब साधक पराशब्द में विलीन होकर समाधि की अवस्था प्राप्त कर लेता है, उसे अपने घर का पता तो चल जाता है, लेकिन जब वह समाधि के बाद, व्यावहारिक जीवन में उतरता है, तो उसकी रहनी उस प्रकार की समता को स्थिर नहीं रख सकती, जो उसे समाधि की अवस्था में और समाधि के दौरान में मिली होती है। उसकी करनी तो उसे कथनी के दर्जे से ऊपर उठा लेती है, किन्तु उसकी रहनी में स्थिरता तभी आ सकती है जब वह सद्गुरु के शरणागत होकर, उसकी दया से वह गुरु जैसा नहीं बन जाता।

करनी की पराकाष्ठा का बयान करते हुए कबीर साहिब ने कहा है :—

जाप मरे अजपा मरे अनहद भी मर जाये।
सुरत समानी शब्द में, वाको काल न खाये॥

इसमें कोई शक नहीं कि शब्दाभ्यास से थोड़े ही समय में साधक उस निर्विकल्प समाधि में पहुँच जाता है, जहाँ पर दुःख-सुख, लाभ-हानि, जय-पराजय, जन्म-मृत्यु, मोक्ष और बन्ध के सभी झगड़े मिट जाते हैं। किन्तु इस समाधि का प्रभाव थोड़े समय के लिए तो अवश्य रहता है, लेकिन स्थायी नहीं होता। परम दयाल जी महाराज ने अनेक बार कहा है कि प्रकाश और शब्द के अनुभव करने के बाद भी वह काम, क्रोध आदि से पूरी तरह बच नहीं सके थे। किन्तु उन्हें विदेहमुक्ति की वह अवस्था और अपने निजस्वरूप का वह ज्ञान, तब प्राप्त हुआ, जब उन्होंने अपने गुरु की

आज्ञा का पालन करते हुए और उन्हें साक्षात् परमतत्त्व मानते हुए, सत्संग दिया और उनका ज्ञान अनुभव में बदल गया। उन्हें सत्संगियों के रूप में राधास्वामी दयाल का दर्शन हुआ और वह हर प्रकार के द्वन्द्व से ऊपर उठकर सहज समाधि की अवस्था में रहने लगे। मेरा कहने का मतलब यह है कि पराभक्ति का रास्ता साक्षात् जीवित सद्गुरु को इष्ट मानकर अपने आपको पूरी तरह से उसके सुपुर्द कर देना है। यह रास्ता कठिन भी है और सरल भी है। कबीर साहिब ने इस पराभक्ति के मार्ग की व्याख्या करते हुए कहा है :—

पिया का मारग कठिन है, ज्यों खाँडे की धार।
डगमगे सो गिर पड़े निश्चल उतरे पार ॥
पिया का मारग कठिन है, खाँडा हो जैसा।
नाचन निकसी बापुरी, फिर घूँघट कैसा ॥
पिया का मारग सुगम है, तेरा चलन अबेड़ा।
नाच न जाने बापुरी, कहे आँगन टेढ़ा ॥
जा खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि देवा।
कहे कबीर सुन साधवा, कर सतगुरु सेवा ॥

इसी जीवनशैली को अपनाते हुए, मैं अपने परमगुरु की आज्ञा-पालनरूपी सेवा करने के लिए ही सत्संगों के दौरे पर जाता हूँ। सद्गुरु की सेवा क्या है? इस विषय पर कभी फिर चर्चा की जायेगी। यहाँ पर मैं आप से अपने अनुभव को बाँट रहा हूँ और सद्गुरु की सेवारूपी सत्संग के दौरे की सूचना दे रहा हूँ।

मैं आपको बता रहा था कि हम भीलवाड़ा से जयपुर पहुँचे। सायंकाल तक श्री हरिवंश लाल होशियारपुर से मैटाडोर लेकर पहुँच गये थे। हमें उस दिन श्री बी. डी. भटनागर की भतीजी के विवाह में जयपुर में ही सम्मिलित

होना था। इस कारण हम रात्रि के 9 बजे देहली के लिए रवाना होकर, दूसरे दिन करीब 3 बजे प्रातःकाल श्री डी.के. गुप्ता के घर पर पंचशील मार्ग पहुँच गये। कुछ विश्राम के बाद हम मैटाडोर से होशियारपुर के लिए रवाना होकर उसी दिन सायंकाल मानवता मन्दिर में पहुँच गये। मैं आपको यह सब सूचना इसलिये दे रहा हूँ, कि आपको मैं अपनी व्यस्तता के बारे में, पूरी तरह से अवगत करा दूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि गुरु की आज्ञा का पालन करने के लिए, दिन-रात काम करना पड़ता है। मैं इस काम में ही विश्राम समझता हूँ। उसका कारण यह है कि गुरु की आज्ञा का पालन करने में मैं अपने आपको खो जाता हूँ और शरीर, मन तथा आत्मा से परे की अवस्था एवं चौथे पद को प्राप्त कर लेता हूँ।

होशियारपुर में 18 और 19 नवम्बर को परम दयाल जी के जन्मदिन के उपलक्ष्य में विशाल सत्संग हुए, जिसमें सैकड़ों सत्संगी दूर-२ से आकर सम्मिलित हुए। इसके बाद में मैं 23 नवम्बर तक मानवता मन्दिर में रहा और सत्संगियों की समस्याओं को सुलझाने के साथ-२ लिखने-पढ़ने का कार्य करता रहा। मुझे 25 नवम्बर को भाग्य माता जी को उनके आपरेशन के बाद अमेरिका से भारत लाने के लिए जाना था। उनके डाक्टर ने कहा था कि उन्हें कम से कम जनवरी के अन्त तक परीक्षणों के लिए डाक्टर की देखरेख में अमेरिका रहना चाहिए। इसके अलावा मेरे अगस्त और सितम्बर के अमेरिका के दौरे में मैं कुछ काम [illegible]धूरे छोड़कर आया था। इन्हीं कारणों से मैं 25 नवम्बर को [illegible] से रवाना होकर 26 नवम्बर को वाशिंगटन डी.सी. [illegible]र। यहाँ पर दो दिन रहने के बाद में मुझे और [illegible]जी को ऐरीज़ोना में डाक्टर फ्रीडमैन की संस्था

में सत्संग देने के लिए जाना था। हम 30 नवम्बर को डा० फ्रीडमैन के यहाँ ऐरीज़ोना पहुँच गये। यहाँ पर दो दिन मेरे विशेष सत्संग हुए, जिनमें उस इलाके के जिज्ञासु लोगों ने भाग लिया। मेरा ऐरीज़ोना जाने का पहिला मौका था। यहाँ पर मेरे सत्संग डा० हरबर्ट परियर की संस्था लोगास विश्वविद्यालय में हुए। यह संस्था भी एक दृष्टि से मानवता धर्म का प्रचार कर रही है और समाधि ध्यान पर ज़ोर देती है। लोगास यूनिवर्सिटी भी भविष्य में मानवता मन्दिर के साथ सहयोग करती रहेगी।

हम 3 दिसम्बर को वाशिंगटन डी. सी. पहुँच गये और 11 दिसम्बर तक यहीं पर रहे। उसके बाद हम एटलांटा जार्जिया में अपने छोटे लड़के डा० प्रियदर्शी जेतली के पास विश्राम के लिए गये। हमारा विचार था कि दिसम्बर के अन्त तक हम केवल विश्राम ही करें, किन्तु मुझें इसी दौरान में नीन दिन के लिए क्लीयरवाटर फ्लोरीडा जाना पड़ा। 20 दिसम्बर को ट्रिनीडाड के कृष्ण मन्दिर सैन फर्नाडो से सम्बन्धित श्री यतीन्द्र नाथ राम प्रसाद एटलाण्टा पहुँचे। उन्होंने आग्रह किया कि मैं उनकी मुँह-बोली बहन लीला के सुपुत्र के विवाह पर ट्रिनीडाड अवश्य जाऊँ।

वास्तव में, उनकी इच्छा यह थी कि इस बहाने से मैं सैनफर्नाडो में कुछ दिन ठहर कर उनके मन्दिर में ध्यान समाधि के प्रोग्राम के लिए देख-रेख कर सकूँ। मैंने 5 दिन के लिए ट्रिनीडाड जाना स्वीकार कर लिया। इसी समय मुझे ग्रीनबे से श्री अजीत कुमार की तरफ से 3, 4 दिन के लिए उनके यहाँ जाने का निमन्त्रण आया। इन कारणों से मुझे भाग्य माता जी को छोड़कर पहिले ग्रीनबे और बाद

में ट्रिनीडाड जाना पड़ा। मैं आपको यह बताना भूल गया कि दिसम्बर के दूसरे सप्ताह में, एटलाण्टा जाने से पहिले हम 3, 4 दिन के लिए मेरीलैण्ड में श्री प्रदीप वाही और अनुराधा वाही के घर पर रहे। श्री प्रदीप वाही हमारे होशियारपुर के परमप्रिय सत्संगी श्री रविनन्दा के साले हैं। पिछले दो-तीन वर्षों से उन्होंने श्री रविनन्दा के द्वारा कई बार होशियारपुर में मुझे कहलवाया था कि मैं एक बार मेरीलैण्ड में उनके घर अवश्य जाऊँ। श्री वाही का निवासस्थान श्रीमती थैल्मा कार्टर के निवासस्थान के करीब है। इस बार मैंने टेलीफोन के द्वारा अनुराधा को पोटामक मेरीलैण्ड में श्रीमती थैल्मा के घर से सूचना दी कि मैं उनके निकट मण्टगुमरी विलेज मेरीलैण्ड में कुछ दिन से निवास कर रहा था। श्रीमती अनुराधा वाही ने तुरन्त कहा, आप तो हमारे बिलकुल निकट आ गये हैं। मैं श्रीमती कार्टर का निवासस्थान जानती हूँ। इसलिये मैं स्वयं ही आपको वहाँ आकर अपने घर ले जाऊंगी। आप कुछ दिन के लिए अवश्य हमारे घर को पवित्र करें।" उसकी यह श्रद्धा देखकर हमें उसके निमन्त्रण को स्वीकार करना पड़ा। इसलिये हम 7 दिसम्बर से 10 दिसम्बर तक श्री प्रदीप वाही और अनुराधा वाही के घर पर रहे। इसी दौरान में अनुराधा के माता-पिता और परिवार के दूसरे सम्बन्धी हमें पोटामक में मिलने के लिए आये।

अनुराधा के पिता जी 80 वर्ष के होते हुए भी क्रियाशील हैं और रिटायर्ड इन्जीनियर हैं। वैज्ञानिक अनुसंधान के साथ-२ वह वेदों और धर्मग्रन्थों का भी गहरा अध्ययन करते हैं। वह घण्टों तक मेरे साथ वार्तालाप करते रहे और उन्हें धर्म के सम्बन्ध में और वेदों के सम्बन्ध में, मानवता

... अनुराधा
... परिवार अब मानवता धर्म
... यह ... इसके फलस्वरूप 20 जनवरी
... विनोद प्रकाश तथा
... आयोजित किया ...
... ने ...
... की कट्टरता
... मानते थे।

... आग्रह किया

... सन्तुष्टि हुई, तो उन्हें ...

... विवाह के बाद ...

... अच्छी ...

... शरणागत ...

... आ गया है ... के निर्माण ...

पवन के बारे में, कई बार मानव ...
... और श्रद्धायुक्त ...
... जी को लिखे हुए पत्र छप चुके हैं। पवन भी मेरे उन
... परमतत्त्व के अंश ...
... उद्धार के साथ-२ मानवमात्र के कल्याण के लिए
... सीधे-सच्चे मार्ग पर चलकर दूसरों के लिए मिसाल
... कर रहे हैं ...

ओत-प्रोत हैं। इनके साथ-२ पोर्ट औफ स्पेन में भी श्री भीमसेन मराज तथा उनका परिवार, श्री दुर्बल सिंह और उनका परिवार तथा अन्य सत्संगी मानवता धर्म के अनुयायी हैं। श्रीमती लीला के सुपुत्र का विवाह 31 दिसम्बर को निश्चित था। बारात के रवाना होने से पहिले श्रीमती लीला और उनके पति डा० राम नरायन राम प्रसाद के घर पर प्रीतिभोज हुआ और दूल्हा को भारतीय परम्परा के अनुसार मुकुट आदि पहनाकर सजाया गया और ब्राह्मण के द्वारा, सनातन धर्म की रीति के अनुसार पूजा आदि कराई गयी। तीन सौ साल से भी अधिक समय से इस देश में बसे हुए हिन्दुओं ने, कर्मकाण्ड की परम्परा को ज्यों का त्यों रखा हुआ है। मुझे उस समय बहुत प्रसन्नता हुई, जब सेहराबन्दी के समय, महिलाओं ने अच्छे स्वर और लय में वही गीत और सोहले गाये, जो आज तक उत्तर प्रदेश में विवाह के समय गाये जाते हैं। प्रसन्नता इसलिए हुई क्योंकि गाने वाली महिलाएं हिन्दी के गीत तो गा रही थीं, किन्तु वह हिन्दी भाषा बिलकुल नहीं जानती थीं। उनकी मातृभाषा अंग्रेजी है। मेरे प्यारे सत्संगियो! भारतीय हिन्दुओं को इस बात पर गर्व होना चाहिए कि सदियों पहले से विदेशों में बसे हुए हमारे भाइयों ने हर दृष्टि से सत सनातन धर्म को एवं भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखा हुआ है, और उसको पूरी तरह से जीवन में उतार रहे हैं। मैंने पहले भी आपको बताया था कि कृष्ण मन्दिर में उत्सवों पर और सत्संगों पर, किस प्रकार हज़ारों हिन्दु पुरुष, स्त्रियाँ, बच्चे और बच्चियाँ नये और सुन्दर कपड़े पहनकर बड़े चाव से सत्संग और पूजा आदि में सम्मिलित होते हैं, आरती करते हैं और सत्संग देने वाले आचार्य और गुरु के पाँव छूकर आशीर्वाद

प्राप्त करते हैं। ऐसे दृश्यों को देखकर एक तरफ तो प्रसन्नता होती है, दूसरी तरफ खेद भी होता है, क्योंकि हमारे अपने देश में, अपने इस वैज्ञानिक और आध्यात्मिक धर्म के सम्बन्ध में, कुछ ही सम्प्रदायों के अनुयायियों को छोड़कर जनसाधारण में इतना उत्साह नहीं है, जितना मैंने ट्रिनीडाड में देखा। अत्यन्त खेद की बात यह है कि भगवद्गीता और रामायण जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थों में ईश्वरभक्ति के मार्ग को तिलांजलि देकर मूर्ख हिन्दू कबरों पर मरे हुए पीर-फ़कीरों को पूजते हैं। उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं कि उनकी इच्छापूर्ति कबरों में गढ़े हुए मुर्दे नहीं करते, बल्कि उनका अपना विश्वास करता है। परमतत्त्व अवतार भगवान राम और भगवान कृष्ण जैसे सत्पुरुषों द्वारा दी गयी आध्यात्मिक शिक्षा को नज़रअन्दाज करके, झूठे और पाखण्डी उन पीरों और स्वार्थी गुरुओं के पीछे लगे हुए हैं और इस भ्रम में लुटे जा रहे हैं कि उनके गुरु उन्हें मरते समय सतलोक ले जायेंगे।

इसमें कोई शक नहीं कि सच्चे सन्त मत में और सनातन धर्म में कोई भेद नहीं है। इस सच्चाई को महर्षि शिवव्रत लाल दाता दयाल जी ने और परमसन्त परम दयाल पंडित फ़कीर चन्द जी महाराज ने स्पष्ट किया है और उसी परम्परा में मैं अपने अनुभव के आधार पर पराभक्ति की व्याख्या कर रहा हूँ और यह बताने की कोशिश कर रहा हूँ कि सत सनातन धर्म और सन्तमत या राधास्वामी मत या मानवता धर्म एक हैं। इनमें किसी प्रकार की भिन्नता या विरोध नहीं है।

मैं आपको बता रहा था कि सेहराबन्दी का दृश्य बहुत सुन्दर था। स्त्री, पुरुष, युवा लड़के और लड़कियाँ,

उसी प्रकार सुन्दर से सुन्दर वेश-भूषा में सजधज कर विवाह उत्सव की शोभा बढ़ा रहे थे, जिस प्रकार भारत में होता है। बारात के रवाना होने से पहले, जो प्रीतिभोज दिया गया, वह बहुत स्वादिष्ट था। दाल-पूरी सब्जी और हलुआ केले के पत्तों पर परोसा गया। मैं समझता हूँ कि हमें होटलों के अन्दर शादी-ब्याह पर लाखों रुपये नष्ट करके, प्लेटों आदि में खाना खिलाने की बजाय पत्तलों पर खाने की परम्परा को वापिस लाना चाहिए। मुझे यह देखकर खेद होता है कि खासकर धनवान हिन्दू परिवार शादियों पर नई-२ अनुचित परम्पराएँ चला रहे हैं। सच तो यह है कि ऐसे विवाह उत्सव आध्यात्मिक, प्रेममय न होकर एक औपचारिकता और आडम्बर बन गये हैं। यही कारण है कि अब हिन्दुओं में विवाहित जीवन में प्रेम के अभाव के कारण, तलाक की परम्परा ज़ोर पकड़ रही है।

सेहराबन्दी के तुरन्त बाद दूल्हे ने मेरे से तुरन्त आशीर्वाद लिया। बाजे-गाजे और ढोल-नगाड़े बजे और पुरानी भारतीय परम्परा के अनुसार बारात का जलूस बन गया। हाँ यह तो सत्य है कि रथों के स्थान पर मोटरकारों का प्रयोग किया गया, क्योंकि ट्रिनीडाड में भी हर हिन्दु घर में कम से कम एक कार अवश्य होती है, और बारात को कम से कम 50 मील दूर वधु के घर जाना था। एक प्रसन्नता की बात यह है कि पंजाब से शुरू होकर सभी प्रान्तों में, जो बारात में अंग्रेज़ी ढंग से नाचने की बुरी प्रथा सभी प्रान्तों में फैल गई है, अभी तक ट्रिनीडाड में यह बीमारी नही आई। ऐसी अनुचित परम्पराओं को जन्म देकर हम विवाह की उस पवित्रता पर आघात कर रहे हैं, जिसके आधार पर दो आत्माओं का विवाह जन्म-जन्मान्तर के सम्बन्धों पर निर्भर माना जाता है। बारात का यह जलस

आधे घण्टे के अन्दर वधू के घर पर पहुँचा और उसके पहुँचने से पहिले बाजे तथा ढोल बजाने वाले मौजूद थे। मुझे दूल्हा की कार में बिठाया गया था और वधू के परिवार को बता दिया गया था कि मेरा दूल्हा के घर से गुरु-शिष्य का सम्बन्ध था। वधू के पिता ट्रिनीडाड के विख्यात धर्माचार्य श्री कृष्ण महाराज थे। उन्होंने मेरा विशेष स्वागत किया। श्री कृष्ण महाराज एक वयोवृद्ध विद्वान् पंडित और हज़ारों हिन्दुओं के पुरोहित और गुरु हैं। उनसे मिलकर मुझे विशेष आनन्द का अनुभव हुआ।

बहुत बड़ा सुन्दर पंडाल हर प्रकार से सजा हुआ था और हज़ारों लोग वधू वालों की ओर से स्वागत के लिए कुर्सियों पर बैठे हुए थे, जहाँ पर बाराती भी बैठ गये। सप्तपदी की रीति से पहिले, वर और वधू को एक सुन्दर मन्दिर में ले जाया गया और पूजा कराई गई। विवाह पूरी तरह से वैदिक पद्धति के अनुसार सम्पन्न हुआ। मैंने आपको यह सूचना विस्तारपूर्वक इसलिये दी है, ताकि मेरे प्यारे सत्संगी सनातन धर्म की अच्छी परम्पराओं का आदर करें और अपने जीवन को सुन्दर और सुचारु बनायें।

मैं 4 जनवरी प्रातःकाल ट्रिनीडाड से रवाना होकर उसी दिन सायंकाल 4 बजे वाशिंगटन डी. सी. पहुँच गया। 5 जनवरी को ही मैं सैनफ्रान्सिस्को कैलीफोर्निया के लिए रवाना हो गया, क्योंकि वहाँ पर श्री विनोद शर्मा और उनकी पत्नी कुसुम ने आग्रह किया था कि मैं कम से कम दो दिन उनके पास रहूँ। आपको याद होगा कि पहिली बार जब मैं सैनफ्रान्सिस्को गया था, तो इनके घर पर नहीं ठहर सका था। यह दम्पत्ति और उनकी सुपुत्री मोनिका आदमपुर के श्री रामदेव दत्ता से सम्बन्धित हैं और अगा

श्रद्धा और विश्वास रखते हैं। 7 जनवरी को प्रातःकाल मैं सैनफ्रान्सिस्को से रवाना होकर मेरे परमप्रिय डा० सुरेश लोढ़ा के पास सैण्टामरिया पहुँच गया। दो दिन यहाँ पर ठहरने के बाद मैं 9 जनवरी को लौसैन्जलस पहुँच गया। यहाँ पव पवन शर्मा अपने भाई रोहित शर्मा के पास आया हुआ था, इसलिये मैं कुछ समय के लिए रोहित के घर ठहरा। एक रात और दिन मैं डा० विद्यासागर कौशिक के घर रहा और 10 जनवरी की रात्रि को परमप्रिय अश्विनी शर्मा के घर से क्लीवलैंड के लिए हवाई अड्डे से रवाना होकर 11 जनवरी प्रातःकाल अपने बड़े सुपुत्र डा० अरुण जेतली और उनकी पत्नी मन्जू जेतली के घर पहुँच गया। इस बार भी व्यस्तता के कारण मैं केवल एक दिन यहाँ रहने के बाद 12 जनवरी को एटलाण्टा जार्जिया पहुँच गया। भाग्य माता जी यहाँ पर मौजूद थीं। हम 18 जनवरी तक प्रियदर्शी के पास एटलाण्टा जार्जिया में रहे। इसी दौरान में मैं एमरी विश्वविद्यालय में धर्मशास्त्र विभाग के अध्यक्ष डा० पाल कोर्टराइट से मिला, जिन्होंने 'श्री गणेश' पर अंग्रेज़ी में एक पुस्तक लिखी है, जो अमेरिका में सर्वप्रिय हो गई। डा० कोर्टराइट मेरी पुस्तकों के कारण और धर्म-कोष में प्रकाशित मेरे लेखों के कारण पहिले से ही मुझे जानते थे। मैं और भाग्य माता जी घण्टों तक उनके कार्यालय में उनसे बातचीत करते रहे। जब वह हमें नीचे टैक्सी तक छोड़ने आये, तो टैक्सी के चलने से पहिले उन्होंने हाथ जोड़कर हमें सम्बोधित करते हुए कहा, "जय गणेश"। हमने भी उन्हें "जय गणेश" कहा और दर्शी के घर पर पहुँच गये। 19 जनवरी को हम वाशिंगटन डी. सी. पहुँचे। और 20 जनवरी को श्री विनोद प्रकाश के घर पर सत्संग देने के बाद हम 24 जनवरी तक उसी इलाके में रहे। 24

जनवरी को न्यूयार्क से रवाना होकर हम 26 जनवरी प्रात:काल नई दिल्ली पहुँच गये। विदेशी दौरे की सूचना इस मासिक सन्देश के लिए, यहाँ तक री पर्याप्त रहेगी। इन शब्दों के साथ, मैं आपको इस महीने की सद्भावना भेजता हूँ। मैंने आपको श्री विनोर प्रकाश के घर पर सत्संग की सूचना इसी सन्देश में पहिले ही दे दी है। इसलिये अन्त में मैंने केवल उसका ज़िक्र किया है। मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि आप मेरे इस नये ढंग से लिखे गये मासिक सन्देश से प्रेरणा लें और आपके लोक और परलोक दोनों बन जायें। आप लौकिक जीवन का सुख भोग कर अन्त में परमधाम के विश्राम को प्राप्त हों, यह मेरा दिली आशीर्वाद है। सबको राधास्वामी !

आपका फकीरमय
मानव

साईं के अनमोल नुक्ते

परमसन्त परम दयाल जी महाराज

मन और मस्तिष्क की गढ़न्त 8

सर्वश्रेष्ठ मन और मस्तिष्क की गढ़न्त या सुधार का उपाय यह है कि मानव सदैव काम में लगा रहे। संलग्नता से वह न केवल पुष्टिवान और शक्तिशाली रहेगा बल्कि अपना आगामी, स्वास्थ्य स्थिर रखने में निरन्तर सफल होगा। यदि इससे काम न लिया गया तो वह समय से पूर्व निकम्मा बन जायेगा और नाना प्रकार के रोगों में ग्रस्त रहेगा। बिना काम का दुष्परिणाम यहाँ ही तक सीमित नहीं रहेगा बल्कि बेकारी के कारण मानव अपने चरित्र और शिष्टाचार की दशा को भी स्थिर नहीं रख सकता और एक ऐसा समय आ जाता है कि वह मनुष्यता के पद से गिर जाता है।

हम में मध्य श्रेणी के व्यक्तियों को विवशतः काम करना पड़ता है। परन्तु ऐसे कुलों में जो प्रतिष्ठित और धनाड्य कहलाते हैं काम करना बुरा और लज्जा की बात समझी जाती हैं। इससे अधिक शोक की और क्या बात हो सकती है। प्रकृति का प्रत्येक कण गतिवान् है। एसा प्रकृति का आदेश है कि हर कोई काम में लगा रहे और इसलिये हमको, तुमको और प्रत्येक को चाहे हम समाज की किसी श्रेणी में स्थित किये गये हों काम करते रहने की आवश्यकता है। यदि इसमें तनिक भी भूल हुई तो मन और मस्तिष्क को सूक्ष्म बनाने का अवसर हाथ न आयेगा।

और न हम भली प्रकार परमात्मा की सृष्टि के मन्तव्य और अपने जीवन के लक्ष्य या ध्येय को समझ सकेंगे। वाणी है :—

सूरज, चाँद फ़लक और तारे, खाक, बाद और आतिश सब।
तेरे लिए काम हैं करते, छूटे तेरा रंजोताब ॥
सब करते हैं तेरी खिदमत दिलोजान से रोज़ो शब।
समझ ग़रज को इनकी प्यारे, तू भी काम में लग अब ॥
काम में मसरूफ़ रहना रात दिन।
ज़िन्दगी नकारा है बेकामबिन ॥
ज़िन्दगी है काम यह हो काम में।
देखना जाये न हो आराम में ॥

"मैं अज्ञानी था" 9

मैं बड़ा अज्ञानी था। बाल्य अवस्था के विवाह के कारण मन अधिक चंचल था। इसलिये उस उपदेश को जो दाता दयाल ने मुझे दिया था समझ नहीं सका था। दाता दयाल ने यह देखकर कि यह मनुष्य सच्चा है किन्तु मन की चंचलता के कारण बात इसकी समझ में नहीं आती। इसलिए मुझे आचार्य पदवी दी। सन् 1919 ई० में पाँच पैसे और नारियल रखकर मुझे नमस्कार किया। परन्तु तुम यह समझते होगे कि मैं कोई महापुरुष था। यह बात नहीं थी। उन्होंने मेरे सुधार को यह खेल खेला था और कहा था कि फकीर तुम यह न समझना कि तुम किसी का बेड़ा पार करोगे किन्तु राधास्वामी धाम में वासा दिलाने वाला सद्गुरु तुमको सत्संगियों के रूप में प्राप्त होगा। मैंने आचार्य पदवी ग्रहण की। चूँकि मैं काल और माया के चक्कर से नहीं निकल सका था इसलिए मुझे यह कार्य दिया गया था।

शोक समाचार

सभी सत्संगी भाई-बहनों को हमें अत्यन्त हार्दिक कष्ट से यह शोक-सूचना देनी पड़ रही है कि राधास्वामी सत्संग डेरा बाबा जैमल सिंह जी, व्यास के गुरु साहिब हज़ूर चरण सिंह जी महाराज गत 21 मई 1990 को मध्याह्न लगभग 1 बजे निज परम धाम को सिधार गये। गुरु साहिब की अवस्था 74 वर्ष की थी। वे अपने पीछे दो सुपुत्र एक सुपुत्री और लाखों बिलखते सत्संगियों को छोड़ गये।

सम्पूर्ण 'मानव मन्दिर' परिवार गहरे विषाद की इस बेला में पूर्ण संवेदना और सहानुभूति के साथ, राधास्वामी सत्संग डेरा, व्यास के साथ शामिल है और सच्चे दिल से मालिके कुल राधास्वामी दयाल से अरदास करता है कि हज़ूर साहिब जी महाराज की महान्-पवित्र आत्मा को परम शान्ति प्रदान करें और शोक-संतप्त परिवार को इस अपूरणीय क्षति को सहन करने की महान् शक्ति दें।

जनरल सेक्रेटरी
मानवता मन्दिर
होशियारपुर (पंजाब)।

शोक समाचार

बड़े दुःख के साथ सत्संगी जन को सूचित किया जा रहा है कि रामगढ़ (हरियाणा) के वरिष्ठ सत्संगी एवं महात्मा जगन्नाथ जी गोयल के कनिष्ठ पुत्र श्री चन्द्र प्रकाश गोयल का दिनांक 12-5-90 को 22 वर्ष की अल्पायु में ही स्वर्गवास हो गया। वे अपने स्वर्गीय पिता की पुण्यस्मृति में प्रतिवर्ष होने वाले सत्संग-भण्डारा की

सामग्री जुटाने में संलग्न थे, तभी चण्डीगढ़ से घर लौटते हुए स्कूटर-दुर्घटना में आपका अचानक निधन हो गया। चन्द्र प्रकाश अत्यन्त सरल, सौम्य और सर्वप्रिय पवित्रात्मा थे। उनका सारा कुन्बा ही परम दयाल जी महाराज के समय से ही अतिप्रेमी सत्संगी है। हजूर मानव दयाल जी महाराज के प्रति इस परिवार के प्रत्येक सदस्य की सेवा और समर्पणभाव सराहनीय है।

'मानव मंदिर' परिवार परम पिना दयाल पुरुष से प्रार्थना करता है कि चन्द्र प्रकाश की आत्मा को स्थायी शान्ति प्रदान करें, तथा शोक-संतप्त परिवार को इस अपूरणीय क्षति के सहन करने की शक्ति दें। **जनरल सेक्रेटरी**

शोक समाचार

सत्संगी जन को सूचित करते हमें अत्यन्त दुःख हो रहा है कि हमारे आचार्य श्री केशव प्रसाद वर्मा, सेशन जज, दिल्ली (गोरखपुर निवासी) की श्रद्धेया माता श्रीमती मोहिनी देवी जी (धर्मपत्नी स्व० श्री कांशी नाथ जी, मुख्वाव), 18 मई 1990 को अपराह्न बेला में अखण्डशब्द-पाठ का श्रवण करती, परम धाम को सिधार गई। माता जी दाता दयाल जी महाराज के समय से ही उत्तम कोटि की सत्संगिन थी और प्रति वर्ष "राधास्वामी धाम", ज्ञानपुर सत्संग में सपरिवार बड़े उल्लास सहित सम्मिलित होती थी। परम सन्त हजूर मानव दयाल जी महाराज के प्रति माता जी की सहज भक्ति के कारण ही हजूर महाराज को अनेक बार उन्हें दर्शन-सत्संग प्रदान करने के निमित्त स्वयं गोरखपुर जाना पड़ा।

शोक-संतप्त परिवार की इस दुःखद बेला में सम्पूर्ण "मानव मन्दिर" परिवार, ससहानुभूति सम्मिलित होते हुए, परम पिता राधास्वामी दयाल से हार्दिक प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को 'निज धाम' में वासा दें, एवं शोकाकुल परिवार को यह अपूरणीय क्षति सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

जनरल सेक्रेटरी

शोक समाचार

सभी सत्संगी जन को बड़े दुःख के साथ सूचित किया जाता है कि दाता दयाल जी महाराज की तीसरी पुत्री श्रीमती कलावती देवी (मुनमुन देवी) का स्वर्गवास गत 19 जून 1990 को रात्रि 1.-25 के लगभग 91 वर्ष की आयु में, अपनी पुत्री श्रीमती राज कुमारी, अर्द्धांगिनी राज कुमार वर्मा स्टेशन मास्टर, फाफामऊ (इलाहाबाद), के आवास पर हो गया। मुनमुन देवी जी का परिवार दयाल बाग आगरा का सत्संगी है और उनका अन्तिम संस्कार राधास्वामी मत की रीति से सम्पन्न हुआ।

मानव मन्दिर परिवार परम पिता दयाल से हार्दिक प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को अपने कमल-चरणों में वासा देकर परमशान्ति प्रदान करें तथा शोकाकुल परिवार को इस क्षति के सहन करने की शक्ति दें।

जनरल सेक्रेटरी

मानव मन्दिर में अगला मासिक सत्संग 15-7-1990 को होगा।

Regd. No. 26265/74 JULY 10th

MANAV MANDIR NWHSP

Address

938 976 Sh. Shinde Vithal
S/o Arjan Rao Gouli Gudda
Banswada Post &
Tq Banswada Distt. Nizamabad
A P

From :

MANAVATA MANDIR
SUTEHRI ROAD,
HOSHIARPUR - 146 001

Shiv Dev Rao Press, Manavata Mandir, Hoshiarpu